श्री वीतरागाय नमः

प्रातः स्मरणीया जैनधर्म-प्रवीणा

श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी

महाराज का

जीवन-चरित्र

हिन्दी अनुवादिका—

प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य पंजाब केसरी पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री काशीराम जी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तिनी महासती पार्वतीजी महाराज की महाभाग्यवती शिष्या श्री भगवान देवी जी महाराज की शिष्यानुशिष्या

श्री मोहनदेवी जी जैन आर्या

प्रकाशक—

श्री महावीर जैन स्कूल

जम्मू।

प्रति १००० सं० १९९९ विक्रमीय मूल्यम् ।)

Printed at—
THE SHARMA PRINTING PRESS.
Jammu

श्री पार्श्वनाथाय नमः



ॐ श्री वीतरागाय नमः

() निवेदन ()

मनुष्य जीवन की सार्थकता कर्मबन्धन से मुक्त होकर निर्वाण पद की प्राप्ति में ही मानी गयी है। केवल सम्राट्, महाराजा तथा धनी मानी बनकर मर जाने से मानव जीवन सफल नहीं माना जा सकता। आज का संसार सांसारिक भोगों की निश्शेष प्राप्ति में ही परम शान्ति प्राप्त करना चाहता है। परन्तु यह कैसे हो सकता है। जो वस्तु जहां विद्यमान ही न हो उसमें उसका अन्वेषण करना अज्ञान नहीं तो और क्या है? आरम्भ में मीठे लगने वाले यह मधुर फल परिणाम में हालाहल जहर का काम करते हैं। सुख तालाश में मारा २ फिरने वाला यह प्राणी इस भूल-भुलैया में पड कर अपना सर्वस्व खोरहा है। जबतक यह सत्यमार्ग का आश्रय न लेगा तबतक मोह के अन्धकूप से नहीं निकल सकता। महापुरुषों ने निरन्तर संयत रहकर सत्यमार्ग की खोज की। व स्वयं जगे और उन्होंने अपने चरित्र के उज्ज्वल प्रकाश और अनुभव के भव्य उपदेश से जगत को जगाया। उनके सोये साहस को जगाया उनकी अन्धकारमयी हिंसात्मक वृत्तियों को अपने निरर्गल करुणा-मृत स्रोत से परम सात्विक और सदय बना डाला। उनमें मनुष्यके जीवन जलप्रवाह को उलट देने की शक्ति ने संसार के हृदय को मोल ले लिया। अतः संसारियोंको उचित है कि अपने तथा भावी सन्तान की कल्याण कामना के लिये महापुरुषों के जीवनचरित्र का स्वाध्याय करें तथा अपने बालक बालिकाओं के कोमल हृदयों उनकी मधुरभरी सक्तियों को अङ्कित करने की चेष्टा करें।

साधु महात्माओं के चरित्र, सत्य सहानुभूति, वास्तविकता अहिंसा, दया, धर्म आदि गुणरत्नों के भण्डार होते हैं। प्रस्तुत जीवनचरित्र पूर्वोक्त गुणरत्नों से सर्वथा सम्पन्न है। इसी विचार से प्रेरित होकर श्री सती द्रौपदी जी महाराज के जीवनचरित्र को जनता के कल्याणार्थ हिन्दी में अनुवाद किया गया है जिसे सं० १९९२ में पण्डित अमरनाथ हकीम ने उर्दू में लिखा और लाला जुगलकिशोर जी ने अमूल्य वितरणार्थ प्रकाशित किया था और उक्त अनुवाद में यथास्थान न्यूनाधिकता की गई है।

श्रीमान् पं० रघुनाथ प्रसाद जी शास्त्री जालन्धर छावनी वा वैद्य महोदय धर्मार्थ औषधालय, ला० लालू शाह जी अमृतसर वा पं० नात्थोरामजी संस्कृताध्यापक एस. आर हाई स्कूल जम्मू वा पं० हरदत्त जी संस्कृताध्यापक एस. आर. हाई स्कूल जम्मू का धन्यवाद करती हूं जिन्होंने इस हिन्दी अनुवाद के संशोधन में सहयोग प्रदान किया।

यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठक महोदय उसका संशोधन स्वयं करलें।

निवेदिका—

आर्या मोहनदेवी जैन साध्वी।

मूल लेखक की

भूमिका

ॐ श्री वीतरागाय नमः

इस पुस्तक के लिखने का आशय यह है, कि समुन्नत देशों के छोटे २ बालकों को धार्मिक, व्यवहारिक और राष्ट्रीय कथायें तथा उपाख्यान सुना सुनाकर, बचपन में ही उनके हृदय-पटल और मस्तिष्क पर देश, जाति और धर्म प्रेम के दृढ़ संस्कार अंकित किये जाते हैं, जो कि प्रत्येक सरक्षक अपने बच्चों की भावी उन्नति के लिए पूर्ण करना अपना कर्तव्य समझता है। फलत बचपन में ही बच्चों के हृदयों में अपने देश, जाति और धर्म के सम्बन्ध में दृढ़ और शुभ भाव उत्पन्न हो जाते हैं। अपने पूर्वजों की ऐतिहासिक, राष्ट्रीय सेवायें उनके शौर्य और पराक्रम की गौरवमय और उत्साहपूर्ण घटनायें सुन २ कर उनके हृदयों में जहा अपने देश, जाति और धर्म के प्रति श्रद्धा और शुभ-भाव उत्पन्न हो जाते हैं, वहा साथ ही अपने उन्हीं प्रख्यात पूर्वजों का पथानुसरण कर उन्हीं जैसे श्रेष्ठवीर और

योग्य बनने और उन्हीं जैसी प्रसिद्धि तथा कीर्ति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन काल में भारतवर्ष में रात्रि के समय बालकों को पवित्र तथा उच्च कोटि की कथायें सुना कर सुख से सुलाने की प्रथा इन्हीं पवित्र विचारों के फल स्वरूप पड़ी हुई थी। हा शोक! कि आज वहीं अपने पूर्व पुरुषों के इतिहास सुनाने के स्थान पर जन साधारण के पास चिड़िया, तोता मैना की कहानियां मात्र रह गई हैं। उक्त भूमिका का आशय यही है कि बाल्यावस्था में अपने बालकों के हृदय तथा मस्तिष्क पर अपने देश, जाति और धर्म की विशेषतायें तथा महत्व अंकुरित हो जाय। आदर्श पुरुषों के जीवन-चरित्र लिखने और उन्हें प्रकाशित करने का उद्देश्य जहां यह होता है कि उनका नाम संसार में स्थिर रहे और भावी सन्तति उनके जीवन वृत्तान्त आदि से परिचित होती रहे, और उनके सदुपदेशों से अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करती रहे, वहां उन्हें अपने पूर्वजों की कीर्ति गाथायें पढ़कर उनके सदृश बनाने और तद्वत् प्रसिद्धि तथा यश प्राप्त करने का उत्साह भरना भी होता है।

इस पुस्तक के लिखने का आशय स्पष्ट है। कौन नहीं जानता कि महापुरुषों की जीवनिया ससार के लिये पथ-प्रदर्शिका होती हैं। जैसे ससार में साधारण श्रेणी का कोई भी पुरुष किसी नदी नाले को पार करने के लिये "पुल" आदि को बांधने का स्वय प्रबन्ध नहीं कर सकता। सामर्थ्य रखने वाले राजा महाराजा लोग बडे २ दरयाओं पर दृढ सेतु-बन्धन द्वारा ससार के गमनागमन कार्य में कितनी सुगमता पैदा कर देते हैं कि जिससे सामान्य मनुष्य भी अनायास पार कर सकता है। इसी प्रकार ससार सागर को पार करने के लिये भी आवश्यक्ता होती है एक ऐसे सेतु (पुल) की जिसके द्वारा आवागमन की दीर्घ यात्रा में भूला भटका हुआ प्राणी सुचारु रूप से इस घोर ससाराटवी से निकल कर भव-सागर को पार कर सके। परन्तु यह पुल तैयार कौन करे? इसके निर्माण में सासारिक सामान की एक नहीं चलती, राजा महाराजाओं का धन, बडे २ बलवान योधाओं का बल इसके बनाने में काम नहीं दे सकता। यह सेतु तैयार करते हैं परमदयालु महापुरुष। वे अपने अमोघ तपोबल से ससार समुद्र को पार करने के लिये एक ऐसा सुदृढ सत्यमार्ग रूप

सेतु बांधते हैं कि जिस पर से पंगु प्राणी भी दौड़ता हुआ पार निकल जाय। महापुरुषों के बिना और किसी प्रकार की भी कोई शक्ति यह दुष्कर कार्य नहीं कर सकती। जीवमात्र के परम हितैषी, समस्त प्राणिवर्ग के प्राण, महान् आत्माएं जब संसार समुद्र में डूबते चिल्लाते हुए परम दुःखित प्राणियों की इस अवस्था को देखते हैं तब उनसे रहा नहीं जाता। उनके जगदाधार हृदय में से वह दया-स्रोत फूट निकलता है, जिससे पीड़ित संसार एकदम शान्तचित्त हो जाता है।

महापुरुष संसार के निष्कारण हितैषी हैं, जन्म मरण की दुःसाध्य व्याधि से निर्मुक्त करा देने वाले वैद्य सम्राट हैं। महापुरुषों से बढ़कर प्राणियों का सच्चा हितचिन्तक संसार में और कोई नहीं है। उनको प्रत्येक प्राणी से प्रेम है कितना समभाव है कितनी कल्याण कामना है इसका संसार में कोई उदाहरण नहीं जिससे उनकी इस निस्वार्थ हितैषिता के साथ तुलना की जा सके, ऐसे दीन-बन्धु महापुरुषों की जीवनियां मृत्युमुख में पड़े संसार के लिये संजीवनियां हैं। उनके जीवन संसार की अटूट सम्पत्ति (जायदाद) हैं। उनकी अनुभूत दिव्यसाधनाएं

हमारा परम धन है। उनके पावन उपदेश हमारे मार्ग-प्रदर्शक प्रकाश-स्तम्भ हैं। एक अपरिचित मनुष्य को किसी अज्ञात स्थान पर पहुँचने के लिये कितनी पूछताछ करनी पड़ती है? कितना भूलना भटकना पड़ता है, जब तक उसको किसी नियत सन्मार्ग का आश्रय अथवा कोई मार्ग-प्रदर्शक न मिले तब तक उसके लिये प्राप्य स्थान पर पहुँचना अतिकठिन हो जाता है। इसके लिये वह स्वय नया मार्ग निर्माण नहीं कर सकता, किन्तु अवश्य ही उसे किसी पूर्व निश्चित मार्ग का आश्रय लेना पड़ता है, और उसके मिल जाने पर उसकी सदिग्ध यात्रा सफल हो जाती है। इसी प्रकार परमार्थान्वेषी मनुष्य को उन महापुरुषों के जीवनचरित्र का आश्रय लेना परमावश्यक हो जाता है जिन्होंने उस सत्यमार्ग को न केवल देखा है किन्तु अपनी गम्भीर गवेषणा से खोज निकाला है, वे उस मार्ग के निर्माता हैं, उन्होंने समस्त ससार की कल्याण कामना मे घोर भयकर विपत्तियों को सिर पर लेकर अपने अनथक परिश्रम से मुक्ति-मार्ग को एक सुरम्य सड़क तैयार करदी है क्योंकि वह प्राणिमात्र के हितचिन्तक हैं वे बेवाजुओं

के शत्रु और वैरियों के पर हैं, समस्त संसार उनका अपना परिवार है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह बेगाना है, यह विचार छोटे चित्त वाले स्वार्थी मनुष्यों का होता है, विशालचित्त और उदारचरित्र महापुरुषों की दयामयी दृष्टि में तो सारी पृथ्वी और जीवमात्र अपना कुटुम्ब होता है। परन्तु इस महान् कार्य के सम्पादन में उन्हें कितना परिश्रम कितनी कठिन साधना कितना त्याग कितना संयम कितनी दृढ़ता और कितना तप करना पड़ता है। इस बात का साधारण व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। वे परम वैराग्यवान् रह कर लौकिक और पारलौकिक सुखों का पूर्ण परित्याग करते हैं। प्राणिमात्र का स्वार्थसाधन ही उनका अपना स्वार्थ हो जाता है। वे परम सदाचार, सत्यविचार और सर्वथा निर्विकार होकर अपने सम्यक् चरित्र और सम्यक् ज्ञान के अमृत से सराबोर होकर संसार के कल्याण के लिए ऐसा शान्ति जलप्रवाह बहा देते हैं जिसमें नहा कर तापत्रयदग्ध संसार नवजीवन पाकर

सुखमय बन जाता है। उनके अघमर्षण दर्शन से मलिन अन्तःकरण मनुष्यों की पापी मनोवृत्तियां निर्मल हो जाती हैं। उनकी मधुर और ओजस्विनी वाणी में वह आकर्षक और सशोधक शक्ति होती है, जिससे हिंसक जीवों के अंदर से भी दया का दरया बह निकलता है। चण्डकौशिक जैसे प्रचण्ड स्वभाव, क्रूरप्राणी की मनोवृत्ति श्रीवीर प्रभु की दिव्योपदेशामृतवर्षिणी वाणी द्वारा किस प्रकार पलट गई थी। एक हिंस्र प्राणी जिसने लगातार के क्रूर कर्माचरण से अपनी नस २ को हिंसात्मक और जघन्य बना लिया था, ऐसा सुधरा कि उसके हृदयभवन में भगवान् के प्रभावोत्पादक वचनों द्वारा पश्चात्ताप की वह अग्नि प्रज्वलित हुई जिसने उसके पूर्वजन्मकृत कुकर्मों के दुर्वासना भवन को एकदम भस्म कर डाला।

आदर्श पुरुषों का जीवन-चरित्र ध्रुव नक्षत्र का प्रकाश होता है। जो कि जन साधारण तथा भूले भटकों को समय २ समय पर सत्पथ-प्राप्ति में सहायता देता है। जैसे— नास्ति सत्यात्परो धर्मः' अर्थात् सत्य बोलना परम धर्म है। ज्ञान का अर्थ है जानना, किसी वस्तु का समाचार ज्ञात करना। ज्ञान दो प्रकार का होता है— सांसारिक

(व्यवहारिक ज्ञान) और आध्यात्मिक ज्ञान। सांसारिक ज्ञान तो साधारण मनुष्यों से प्राप्त हो सकता है। किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होना कठिन है। आदर्श महात्मा पुरुषों के जीवन चरित्र से हम गृहस्थियों को दोनों ही ओर का ज्ञान प्राप्त करना होता है। क्योंकि ऐसे महात्मा पुरुषों के ज्ञान तथा चरित्र में सचाई, सहानुभूति और वास्तविकता कूट २ कर भरी हुई होती है, जिसका सामान्य मनुष्यों के जीवन में उपलब्ध होना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्यमेव है। श्री श्री १००८ श्री ब्रह्मचारिणी सती द्रौपदो जी का यह जीवन-चरित्र उक्त सर्व गुण सम्पन्न देखकर उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पवित्र जीवनचरित्र से भविष्य में लाभान्वित होने के लिये यह पुस्तक लिखने का विचार श्री आर्या मोहन देई जी के मुखारविन्द से सुनकर उनका आशय भाई जुगलकिशोर जी ने उत्साह से पूर्ण किया। यद्यपि जीवन-चरित्र का उद्देश्य जीवन वृत्तान्त ही है तथापि इस पुस्तक लिखने का आशय केवल श्री सती जी के जीवन वृत्तान्त जन्म तिथि सम्वत् सत्यात्मानुभव तथा कुछ एक अन्य बातों को लेखबद्ध करना नहीं प्रत्युत इसके लिखने से जहां उपर्युक्त

ध्येय ईप्सित है वहा सत्यानुभूति का विरह वर्णन भी है। अर्थात् जन-साधारण को (अहिंसा परमो धर्मः) के महत्व और विशेषता को दिखला कर उसके सम्बन्ध में उपदेश जैनधर्म के सच्चे और अटल नियमों तथा सिद्धांतों से परिचय, जैन-धर्म के विषय में जो आक्षेप तथा भ्रमपूर्ण विचार साधारण जनता के हृदयों में अज्ञानवश उत्पन्न हो चुके हैं। उनके निराकरणादि करने का प्रयत्न भी किया किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक—

शुद्ध वैराग्य, त्याग, सेवा और परोपकार का महत्व प्रत्यक्ष करने तथा वास्तविक और सच्चे अर्थों में वैरागी, त्यागमूर्ति जैन साधु महात्माओं के सम्बन्ध में सत्य निवेचन करने, नास्तिकता के विषय में अपरिचित कई एक पुरुषों के भ्रम और आक्षेपों की वास्तविक स्थिति और उनका युक्तियुक्त पूर्ण उत्तर कुछ एक शब्दों में देने और बहुमूल्य शिक्षाओं, कुछ रहस्यमय नियमों पर प्रभावशाली उपदेश देने के लिये जो केवल जैनों को नहीं बल्कि मनुष्य मात्र को लाभप्रद हैं, आदि २ विषयों पर लिखी गई है। जहां तक हो सका इस बात का विशेष प्रयत्न किया

गया है कि इसमें कोई एक भी ऐसा शब्द न आने पावे जो किसी महाशय को अरुचिकर एवं श्रुतिकटु प्रतीत हो। क्योंकि जैन सिद्धान्तानुसार किसी जीव को वचन प्रयोग द्वारा या मानसिक संकल्प से भी न्यूनातिन्यून क्लेश पहुंचाने का विचार करना महान् दोष है। इस लिये इसमें जो कुछ लिखा गया है अतिशुद्ध भावों से प्रेरित होकर केवल सत्य प्रकाशनार्थ लिखा गया है। आशा है कि प्रत्येक जैन और अजैन सज्जन इसके पढ़ने से समान ही लाभ के भागी होंगे। सत्यान्वेषी निष्पक्षपाती बुद्धिमान् मनुष्य यदि गम्भीर विचार करेंगे तो उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि वर्तमान समय में यह जैन समाज हिन्दु समाज में गौरवशाली सम्प्रदाय है।

सांसारिक व्यवहार वाणिज्य व्यापारादि और धार्मिक विषय दोनों में जैन समाज बढ़ा-चढ़ा है। वैराग्य, त्याग, सेवा और परोपकार की पवित्र भावनाओं से ओत-प्रोत जैन साधु महात्मा आज इस हिन्दु जाति में एक गौरवपूर्ण उच्च स्थान रखते हैं। विद्वानों का कथन है कि किसी पुरुष, जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय के विषय में मत-प्रदर्शन करने से पूर्व उसके सिद्धान्तों और निगूढ तत्वों से परिचित

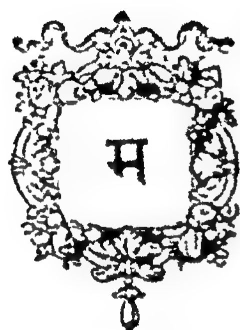
दया का दे रहा उपदेश "द" अक्षर जमाने को ।
भर रहा ज्ञान के रत्नों से "र" दिल के खज़ाने को ॥१॥
औषधि "औ" खिलाता है कि सब दुःख दूर हो जायें ।
परमपद "प" दिलाता है कि बन्धन चूर हो जायें ॥२॥
"अ" कहता है अहिंसा धर्म का पालन किया करना ।
"द" कहता है पराई वस्तु में तन भी दिया करना ॥३॥
यही उपदेश है "आ" का धर्म की शान पर मरना ।
समझना सबको अपने आपसा सबकी व्यथा हरना ॥४॥
कह रहा "विन्दु" ऊपर का विषय की वासना त्यागो ।
भलाई कर चलो जग को जगाओ और खुद जागो ॥५॥
जैन सिद्धान्त वीणा के यह मीठे तार हैं सातों ।
बजाये जो कोई इनको ये करते पार हैं सातों ॥६॥



जीवन चरित्र

ब्रह्मचारिणी सती श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी महाराज



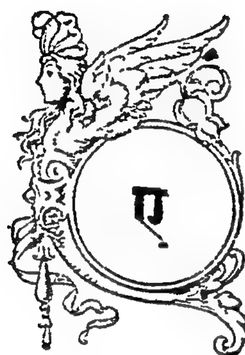


हानुभाव सज्जनवृन्द ! इससे पूर्व कि सती जी का जन्मस्थान और परिवार परिचय तथा बाल्यावस्था के वृत्तान्तों और विचारों को लेखबद्ध किया जाय, सबसे प्रथम एक ऐसी सत्यपूर्ण घटना लिखना अत्यावश्यक प्रतीत होता है. जिसका सम्बन्ध विशेषकर आध्यात्मिक सत्यता से है। जिस पर विचार करने से जैनधर्म के प्राचीन और अटल नियमों की तरह प्रकृति का पुरातन और अटल नियम प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगा। साथ ही यह भी ज्ञात हो जायेगा कि किस तरह एक भावी घटना के सम्बन्ध में उच्चात्माओं के हृदय में स्वभावतया वायरलैस की तरह लहरें उत्पन्न होने लगती हैं अर्थात् किसी भावी घटना की सूचना उन्हें पहले ही हो जाती है। जैसे कि श्री सती जी की बाल्यावस्था की एक घटना है जिसका विस्तृत विवरण यथास्थान आयेगा।

किस तरह और किन कारणों से श्री सती जी के हृदय में यह शुद्ध, पवित्र और निर्लेप विचार उत्पन्न होकर अंकुरित होने लग गया था कि बड़े होकर हम भी इन सांसारिक झंझटों से पृथक् रहें तथा हम भी अपने आपको उन पवित्र महात्मा पुरुषों की भांति बनाएँ जिन्होंने कि मनुष्य जाति की भलाई सेवा और परोपकार के निमित्त अपने प्रिय जीवन को न्यौछावर कर संसार में यश और कीर्ति प्राप्त की है। ताकि इनसे संसार के लोग लाभ उठा सकें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह विचार किस तरह सफल हुआ। निष्कर्ष यह है कि जैसा होना था, सती जी के हृदय और बुद्धि में स्वतः ही उन पवित्र और शुद्ध विचारों का अधिकार हो चुका था। इस बात का सविस्तार विवेचन यथास्थान होगा, यहां तो केवल यह स्पष्ट लिखना चाहता हूँ जो कि श्री सती जी की मातेश्वरी को उस समय आया था। जबकि श्रद्धेय या सती अभी माता जी के गर्भ में ही विराजमान थीं। यों तो यह एक साधारण घटना मालूम होती है पर नहीं। यदि इस पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो मेरा विश्वास है कि इन भावों का इसमें अद्भुत रहस्य उपलब्ध होगा।

स्वप्न

—:0:—



क रात्रि को आपकी माता श्री यमुना देवी जी शुद्धचित्त और आनन्द से प्रार्थना आदि करके अपनी सुख शय्या पर सो रहीं थीं कि आधी रात के उपरान्त स्वप्न में क्या देखती हैं कि एक हरा भरा मनोहर उपवन है, भांति २ के फल वाले वृक्ष, बेलें और पुष्प अपने २ स्थान पर लहरा २ कर वायु को सुगन्धित कर रहे हैं। सामने एक सुन्दर जलाशय है, जो शुद्ध और निर्मल जल से परिपूर्ण है तथा सुगन्धित समीर से तरङ्गित होकर लहरें ले रहा है। उसमें तरह २ के लाल २ नील २ कमल सुशोभित हो रहे हैं। उन पर भ्रमर मडरा रहे हैं। देखते ही देखते एक बड़ा सुन्दर और मनोहर कमल जलाशय के पानी से बाहिर निकलता है और विकसित हो जाता है। उसकी सुन्दर पंखड़ियां चारों ओर फैल जाती हैं और उसकी भव्यता

और सुगन्धि समस्त भ्रमरों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। अत. ये सब भ्रमर उस पुष्प के आस पास चारों ओर गूंजने लगते हैं। इतने में उस प्राकृतिक दृश्य स्वरूप स्वप्न को देखते २ माता जी के नेत्र खुल जाते हैं। वे इस स्वप्न पर विचार करने लगती हैं। अन्त में उनका ध्यान अपने गर्भ की ओर जाता है और उनके हृदय में दृढ़ विश्वास हो जाता है कि जो जीव इस गर्भ में है वह अवश्यमेव इस कमल पुष्प की भांति शोभायमान और जगत में प्रसिद्ध होगा। जिस प्रकार इस कमल की सुगंधि ने सब भ्रमरों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था उसी रीति से भावी बालक का ज्ञान और सुचारित्रमय शुद्ध तथा पवित्र जीवन सासारिक जीवों को अपनी ओर आकर्षित कर सुमार्ग में प्रवृत्त कर लेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किस भान्ति श्री सती जी के उच्च ज्ञान, चारित्रसम्पन्न जीवन, त्याग, कठिन व्रत, तपस्या, उपदेश और परोपकार की मधुर सुगन्धि ने सासारिक जीवों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उनके जीवन का एक २ दिन, दिन की एक २ घडी, घडी का प्रतिक्षण इस बात का जीवित प्रमाण है।

श्री सती द्रौपदी जी महाराज का जन्म



जिस दिन श्री सती जी की माता को रात्रि के समय स्वप्न में भविष्य के विषय में अनुभव हुआ, उसी दिन से उनके हृदय और मस्तिष्क में हर समय अपने गर्भ के सम्बन्ध में शुभ और पवित्र विचारों की लहरें उठने लगीं। उनकी एकमात्र यही अभिलाषा रही थी कि मेरे गर्भ से उत्पन्न जीव संसार में प्रतिष्ठित तथा यशस्वी हो। जिससे परिवार का नाम सदा संसार में स्थिर रहे। अहा ! अहा ! यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी माता जी का यह शुभ विचार कैसे सोलह आने पूर्ण हुआ।

माता जी के विचार और भावों का प्रभाव गर्भ पर अवश्य पड़ता है, इसके प्रमाण इतिहास में सैकड़ों ही मिलते हैं। आइने अकबरी से सम्राट अकबर के विषय में प्रसिद्ध एक घटना प्रमाण के लिए लिखी जाती है।

जिन दिनों हुमायूं सम्राट अपने भाईयों के भय से

भारतवर्ष छोड़कर इधर उधर भागा फिरता था, उन दिनों गर्भवती बेगम तथा केवल चन्द एक विश्वस्त साथी उनके साथ थे। हमायूं ने एक जगह किसी स्थान पर पड़ाव डाला तो बेगम बाहिर उपवन में भ्रमण करने को निकली। वह एक ओर घास पर बैठकर अपने पाव के तलवे में एक पुष्प का चिह्न बनाकर सूई के साथ उसमें हरा पीला रङ्ग भर रही थी कि हमायू भ्रमण करता २ उस ओर आ निकला। बेगम को कार्य में व्यस्त देखकर खड़ा हो गया और पूछने लगा—बेगम साहिबा! यह क्या कर रही हो? तब बेगम नेउत्तर दिया— सम्राट! मेरी यह इच्छा है कि जो बालक कुछ मास के अनन्तर मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला है उसके पांव तले भी इसी प्रकार का सुन्दर पुष्प अङ्कित हो। बादशाह यह सुनकर मुस्करा पड़ा। परन्तु बलिहारी उस प्रकृति की शान पर। जब अकबर उत्पन्न हुआ तो उसके पाव पर ठीक वैसा ही विकसित पुष्प अपनी अद्‌भुत शोभा छिटका रहा था अर्थात् उसके पैर पर माता के मनोरथानुसार मनोहर पुष्प अङ्कित था। (देखो आइने अकबरी, आजाद कृत)

यह भावों का ही प्रभाव था कि श्री माता यमुना जी के गर्भ से वह हीरा जीव उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी प्रभा से सर्वत्र प्रकाश कर दिया। जनता के मलिन मनों को अपने सदुपदेश और व्याख्यानों की अमृतवर्षा से धोकर उन्हें स्थायी शान्ति और सुख प्रदान किया।

ऐसे रत्न और हीरे बारम्बार और सदा उत्पन्न नहीं हुआ करते। जब कभी देश और जनता का सौभाग्य होता है और उसकी आध्यात्मिक जिज्ञासा पूर्ण करने की आवश्यकता होती है, तभी ऐसे दिव्य रत्न जनता को कृतार्थ करने के लिए, जगत के उद्धारार्थ दर्शन दिया करते हैं। पर्वत लाखों करोड़ों प्रस्तर खण्डों का एक लम्बा चौड़ा, ऊँचा ढेर होता है और समुद्र अथाह जल का भण्डार, किन्तु उनमें हीरे, लाल या मोती कहीं २ ही मिलते हैं। जो भाग्योदय से किसी भाग्यवान् को दृष्टिगोचर होकर उसके दुःख दरिद्रों का नाश कर देने में सहायता देते हैं। ठीक यही हाल ऐसे शुद्ध और पवित्र जीव अर्थात् उच्चात्माओं का होता है, जो कभी २ किसी सौभाग्यशाली माता पिता के गृह में जन्म लेकर

हम गृहस्थियों के आध्यात्मिक दरिद्र को दूर कर देते हैं। ठीक है—

किं किं न करोति कल्पलतेव सत्सङ्गति ।

नमस्कार ! नमस्कार ! वारम्वार नमस्कार ! ऐसे पवित्र और उच्चात्माओं को, जिन्होंने सम्पूर्ण सासारिक सुखों को त्याग कर अपने वैराग्य, त्याग और कठिन तपश्चर्या के बल पर आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करके हम जैसे सासारिक चिन्ताओं में ग्रस्त गृहस्थियों को अपने अमृतरूपी मनोहर उपदेशों और व्याख्यानों से कृतार्थ करके वास्तविक, स्थायी आनन्द का मार्ग दिखाकर उच्चावस्था अर्थात् निर्वाण पद प्राप्त करने की सीढ़ी पर चढ़ा दिया। धन्य भाग्य हैं उस माता पिता के, उस परिवार के और गोत्र के, जिनके यहां ऐसे तेजस्वी रत्न ने जन्म लेकर अपने माता पिता और नगर अम्बाला, नहीं नहीं, अखिल भारतवर्ष का नाम प्रकाशित कर दिया। अम्बाला नगर और उसकी पवित्र भूमि को भविष्य के लिए भारतीय जैनसंघ के लिये तीर्थ का गौरव प्रदान किया।

श्री श्री सती द्रौपदा जी का जन्म, माघ वदि प्रतिपदा सम्वत् १९३४ विक्रमीय ६ बजे सायङ्काल को अम्बाला

नगर में भक्त मेलाराम जी सुपुत्र ला० नानूमल जी अग्र-वाल, सिंहल गोत्रीय के यहां जो कि एक उच्च परिवार के सदस्य थे, ऐसी शुभ तिथि में हुआ कि वह घड़ी आज जैन समाज के लिए प्रकाशस्तम्भ से न्यून नहीं कही जा सकती।

श्री सती जी का घर प्रारम्भ से ही बड़ा भक्त और धर्मात्मा था। विशेषतया उनके पिताजी तो बहुत ही भक्त, दयावान् और धर्मात्मा थे। उनका समय उपासना और साधु सेवा में व्यतीत होता था। दया धर्म तो उनमें कूट २ कर भरा हुआ था। वे बड़े सच्चे और परोपकारी जीव थे। "परोपकाराय सतां विभूतयः" इस उक्ति के साक्षात् प्रमाण थे। हर समय दूसरों की भलाई उनके दृष्टिगत रहती थी। कभी किसी के साथ किसी तरह की बुराई नहीं करते थे। बल्कि उनमें सहिष्णुता इतनी अधिक मात्रा में थी कि कभी किसी पर तीव्रातितीव्र बात पर भी उनको क्रोध नहीं आता था। जो गुण भक्त और धर्मात्मा पुरुषों में होते हैं, वे सब उनमें विद्यमान थे। उन दिनों अम्बाला नगर में उनकी गणना अग्रगण्य पुरुषों में थी। प्रत्येक मनुष्य उनसे सम्मानपूर्वक व्यवहार करता था और ईश्वर कृपावश ऐसा ही हाल उनकी माता जी अर्थात् श्री

यमुनादेवी जी का था। जो गुण एक सच्ची स्त्री में होने चाहियें, वे सब उनमें विद्यमान थे। तात्पर्य यह है कि यह युगल (पति पत्नी) उन दिनों अम्बाला में एक आदर्श दम्पति थे। सती जी जब रामायण की कथा श्रवण करतीं तो उस समय मारे आनन्द के आपके हृदय में वैराग्य-तरंगें हिलोरे लेने लगतीं। कथा समाप्त होने पर पण्डित जी का आदर सत्कार करते अन्य भाई बहिनों को देखकर आपके दिल में यह भाव पैदा होता कि मैं भी कथा करूँ। आप जब शिवालय जातीं तो वहा भी ध्यान लगा कर बैठ जातीं। सेवा और शुभ भाव ग्रहणार्थ उत्सुकता आदि बातें आपमें आरम्भ से ही थीं।

श्री सती जी की एक बडी बहिन श्रीमती गणेशीबाई जी अम्बाला में ही लाला सुखचन्द जी जैन से व्याही हुई थीं। श्रीमती बहिन जी के सहवास और उपदेश से जैनधर्म के साथ आपको प्रेम हुआ। यहा तक कि आप अपना समय व्यर्थ खेल कूद में नष्ट न कर विद्योपार्जन और धर्मचर्चा सुनने में ही व्यतीत करने लगीं। जब कभी अपनी सखियों के सङ्ग बैठकर बातें करने लगतीं तो उनको सदा धर्म और ज्ञान का उपदेश देतीं। आप बचपन में

भी जबकि प्राणीमात्र विनोदप्रिय होता है. कभी किसी प्रकार के खेल कूद की ओर आकर्षित नहीं हुईं। अपनी सहवासिनियों को बारम्बार यह बात कह कर धर्म की ओर प्रवृत्त करतीं कि देखो खेल कूद में क्या धरा है। हमारे माता पिता जब कभी व्यर्थ समय नहीं गंवाते, सदैव प्रभु का स्मरण तथा कीर्तन किया करते हैं। बहिनो ! हम सबको भी उन जैसा कार्य करना चाहिये। प्रभु का स्मरण सब कष्ट, क्लेश नष्ट कर देता है। आओ हम भी सब मिलकर प्रभु का जाप किया करें। रात्रि को सोते २ जब कभी आपकी निद्रा भङ्ग हो जाती, उसी समय आप ध्यान लगाकर बैठ जातीं और मन में विचार करतीं कि अब क्या करना चाहिये। ध्यान में क्या पाठ पढ़ूं ? आप भगवान् का नाम जपने में घण्टों ही व्यतीत कर देतीं। गर्मी सर्दी का विचारमात्र भी आपके मन में न आता।

आपकी मनोवृत्ति धर्म में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। हर समय प्रभुप्रेम और ज्ञानोपदेश सुनने और सुनाने की लग्न सी हो गई। जब इन बातों की सूचना पिता जी को मिली तो उन्हें चिन्ता उत्पन्न हुई। वे शीघ्रतापूर्वक

विवाहादि के बन्धन में बांधकर इन्हें ऐहिक सुख में फंसाने का प्रयत्न करने लगे।

अग्रवाल वंश के एक उच्च घराने में एक वर तालाश कर विवाह का प्रबन्ध करना प्रारम्भ किया, परन्तु वरपक्ष ने बाल्यावस्था में विवाह करने से इन्कार कर दिया। शक्त्यनुसार विशेष अनुरोध करने के पश्चात् अन्त में सम्वत् १९४६ वैशाख मास में ग्यारह वर्ष की अवस्था में विवाह अम्बाला नगर में ही बाबू कृपागोपाल जी सुपुत्र ला० वंशीलाल जी अग्रवाल गर्ग गोत्रीय से होगया। विवाह संस्कार के पश्चात जब ये श्वसुरालय से लौटकर आई तो अपनी बहन के यहां गई। वहां भिक्षार्थ आई हुई जैन सतियां देखीं। उन्हें यह देखकर महानाश्चर्य हुआ कि बहिन के श्रद्धा तथा नम्रतापूर्वक बहुत भोजन देने पर भी उन्होंने अत्यल्प भोजन ग्रहण किया। वह भी बिल्कुल साधारण। यह दृश्य देखकर उनके हृदय पर बड़ा प्रभाव हुआ और उपाश्रय में जाकर श्री आर्या जी महाराज से जैनधर्म के सम्बन्ध में विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुकता प्रकट की। श्री आर्या जी महाराज ने जैनधर्म पर भावपूर्ण विवेचन किया जो निम्न कविता से ज्ञात होगा-

() दोहा ()

जैनधर्म है मानता, आवागमन प्रधान ।
निराकार आनन्दमय, ईश अकर्ता जान ॥

† चौबोला †

वह शत्रु न मित्र किसी का है, टंटों में कभी न आता है ।
जब फँसे वही टंटों मे क्यों, आनन्दरूप कहलाता है ॥
जैन का अहिंसा कर्मचक्र, है सबसे बड़ा असूल यही ।
बुनियाद है पक्की दया धर्म, है जैन धर्म का मूल यही ॥
इस दया धर्म द्वारा अपना, निर्मल करना व्यवहार सदा ।
काया से मन से वाणी से, मन मार करें उपकार सदा ॥
है दया धर्म जो आदिमूल, उसको हरगिज़ भूले न कभी ।
दुःख देख न मन मे घबराये, सुख में हरगिज़ न फूले कभी ॥
हो दयाभाव सब जीवों पर, हमदर्दी सेवा धर्म करे ।
केवल न करे वाणी से ही, संयम से असली कर्म करे ॥
है जग मे कायम जैनधर्म, जब से सृष्टिक्रम चलता है ।
इसकी स्थिरता का पता हमें, फिर वेद तलक से मिलता है ॥
जो जैन धर्म को धारण कर, निज जन्म सफल करना चाहे ।
पर सेवा पर उपकारों से, निज पाप सकल हरना चाहे ॥
सुख पहुँचा कर सब जीवों को, सेवा से निज तन शुद्धि करे ।
फिर भक्तिभाव तत्परता से, श्रद्धा से निज मन शुद्धि करे ॥
है दया अहिंसा परम धर्म, करना फिर परोपकार सदा ।
है सुख का सागर जैन धर्म, रत्नों का भरा भण्डार सदा ॥

जो डुबकी यहा लगावेगा, वही यह रत्न पावेगा ।
है नाथ की विनती यही मगर, दिल में जो लग्न लगावेगा ।
आवागमन से रहित होकर, वह ऊँची पदवी पावेगा ॥
इस जैन धर्म पर चलने से, तन मन निर्मल हो जावेगा ॥
है जैन धर्म सबसे उत्तम, यह जन्म मरण दुःख दूर करे ।
यह झूठ कपट पाखण्ड और, दुविधा को चकनाचूर करे ॥

प्रतिदिन आने जाने और उपदेश सुनने से हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सारा ससार दुःख-समुद्र दिखाई देने लगा। सोचने पर दुःख से छुटकारा पाने के लिए, दया, धर्म, परोपकार और प्रभुभक्ति के अतिरिक्त कोई भी उपाय न सूझा। कुछ तो पहले ही इस ओर रुचि थी, कुछ अब नित्य दर्शन और उपदेश श्रवण से बढ़ गई। मन की मलिनता दूर हो गई। चित्त शुद्ध दर्पण की भान्ति उज्ज्वल हो गया।

पाच छ. वर्ष पर्यन्त विवाह नियमानुसार सुसराल जाती रहीं। और जब जातीं अतिनम्रता और लज्जापूर्वक रहतीं। सास जी की आज्ञानुसार अन्न जल अथवा कोई और वस्तु जब कभी भी पतिदेव को देतीं, दूर से ही पास रख देतीं। आत्मसयम का विशेष ध्यान

रखतीं। यहां तक कि पतिदेव के साथ अपने वस्त्र तक न लगने देतीं, क्योंकि आरम्भ से ही उनका विचार था कि मैं गृहस्थाश्रम में न रहूँगी। एक न एक दिन साध्वी दीक्षा अवश्य लूंगी, चाहे कभी लूं। अत एव वे अपने ब्रह्मचर्य को वास्तविक अर्थों में निभाने के लिए ऐसा करतीं थीं। क्योंकि जैनधर्म का यह अटल सिद्धांत है कि पुरुष गृहस्थाश्रम त्याग कर साधु होना चाहे, तो वह स्त्री स्पर्श से, और जो स्त्री साध्वी होना चाहे वह अपने आपको पुरुष-स्पर्श से शक्त्यनुसार पृथक् रक्खे।

सम्वत् १९५२ में अम्बाला नगर में महासती श्री श्री १००८ श्री भगवान् देवी जी महाराज का चातुर्मास्य हुआ। उनके सत्सङ्ग से, आपको गृहस्थजीवन त्याग करने की अत्यभिलाषा हुई। वैराग्य तो पहले से ही था। सती जी से साधुजीवन के नियम आदि का परिचय प्राप्त कर, अपने पतिदेव, सास,ससुर, पिता तथा अन्य सम्बन्धियों से नम्रता-पूर्वक विनती करने लगीं कि आप प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करें। मैं साध्वी जीवन धारण करना चाहती हूँ। कुटुम्बियों ने साधु-जीवन के कष्ट सुनाए जो निम्नलिखित प्रश्नोत्तर से ज्ञात होंगे—

प्रश्न पिता की ओर से

हे पुत्री ! हमें बताओ तो, किस कारण चित्त उदास हुआ ।
घर में क्या पहुँचा कष्ट तुम्हें, क्योंकर वैराग्य विकास हुआ ॥
बचपन की भोली उमर कहा, वैराग्य के रूखे भाव कहां ।
यह अतिकोमल सा फूल कहा, वह तप का अतिसन्ताप कहां ॥
है जैन धर्म व्रत कठिन महा, खड्गे की तीखी धारा है ।
घर में सुख सहित निवास करो, यह क्या विचार उर धारा है ॥

उत्तर श्री द्रौपदा जी का—

क्या कहूँ पिताजी ! बेबस हूं, मुझ को सुख भोग नहीं भाना ।
दुनिया है कानन कांटों का, इसमें अब रहा नहीं जाना ॥
संसार मुसाफिर खाना है, दो दिन का ठौर ठिकाना है ।
किस वस्तु में कोई प्रेम करे, कर्मों का ताना बाना है ॥
स्थिर चीज नहीं इसमें कोई, जो आया इसने जाना है ।
इसके सम्बन्ध सभी झूठे, झूठा सुख भोग बहाना है ॥
यह मोह प्यार सब झूठा है, है अपना कौन बिगाना है ।
मुझ को यह इस विराग हुआ, सन्यास ग्रहण व्रत ठाना है ॥

प्रश्न पिता की ओर से—

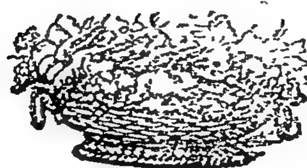
सुन पिता दुःखित होकर बोले, पुत्री ! ऐसा न विचार करो ।
सन्यास का समय नहीं तेरा, कहना मेरा स्वीकार करो ॥
यह बचपन तप के योग्य नहीं, यह समय है खाने पीने का ।
संसार की मौज बहारों का, घर में ही सुख से जीने का ॥

उत्तर श्री द्रौपदी जी का—

मुझको गृहस्थ की चाह नहीं, सुख दुःख की कुच्छ परवाह नहीं।
सत्गुरु ने राह दिखादी है, अब और हमारी राह नहीं॥
फूलों के ढेर समान पिता! लगती खंडे की धार मुझे।
दिल वश में रहा नहीं मेरा, गुरुभक्ति रही पुकार मुझे॥



जब आपके पतिदेव, पिताजी और अन्य सम्बन्धियों ने देखा कि उनके विचार गृहस्थाश्रम की ओर नहीं बल्कि त्याग धर्म की ओर अधिक प्रवृत्त हैं, तो विवश होकर उन्होंने आज्ञा दे दी। चूंकि जैन साध्वियों के पास आने जाने और उपदेश आदि श्रवण करने का प्रेम तो था ही. अतएव अब यह प्रेम, रुचि और त्याग वैराग्य लग्न दिन प्रतिदिन नदी के प्रवाह के सदृश बढ़ती चली गई।



आपका दीक्षा ग्रहण करना





क्षा— जैनधर्म में दीक्षा का आशय, सांसारिक झंझटों से स्वतन्त्र होकर, सेवा, परोपकार, प्रभु-भक्ति द्वारा अपने तन, मन को शुद्ध करते हुए, मुक्ति अर्थात् निर्वाण पद को प्राप्त करने के लिए अपने गुरु महाराज के चरणों में उपस्थित होकर, संसार को दुःखों की खान समझते हुए, उससे निवृत्त होना तथा साधु वेष धारण कर, आत्मशुद्धि करते हुए, आवागमन अर्थात् जन्म मरण के दुःखों से रहित होने का यत्न करना है।

जैन परिभाषा में इस शुद्ध, पवित्र, प्रभावशाली और सत्यपूर्ण त्याग धारण करने वाले दृश्य को दीक्षोत्सव कहा जाता है और वास्तव में यह दृश्य दर्शनीय होता है। लेखक ने स्वयं रियासत बीकानेर में ऐसे दृश्य देखे हैं। देखने योग्य, सत्यपूर्ण और वास्तविक इसलिए कि जैन धर्म में साधारण भूखा नंगा सांसारिक कार्य व्यवहार के

अयोग्य, गृहस्थ चिन्ताओं तथा कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने और जन साधारण की आंखों में धूल झोंकने के लिए, किसी प्रकार के अपराध या ऋणादि से मुक्त होने की खातिर सत्यता को छिपाता हुआ, सिर मुंडवाकर साधु का वेष धारण नहीं करता। जैन धर्म इस कार्य को महान् पाप और कपट प्रतिपादन करता है। इस धर्म में प्रायः धनी मानी घरानों के और कई बार लाखों करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी, मां बाप के इकलौते बेटे, इस कार्य के लिए अग्रसर होते देखे गये हैं। वे नवयुवक तथा नवयुवतियां जिनके मन में वास्तविक और सच्चा वैराग्य तथा त्याग उत्पन्न हो चुका हो, साधुवृत्ति के पात्र समझे जाते हैं। वे तन, मन से शुद्ध होकर बड़े प्रेम और हार्दिक उत्साह से अपने गुरु जी के समीप दीक्षा ग्रहण करते हैं और वह भी बड़ी धूम धाम से, प्रायः सैकड़ों सहस्रों मनुष्यों के सन्मुख।

क्या यह बात कुछ कम महत्वपूर्ण है कि इधर दीक्षा ग्रहण करना और उधर सर्व संसारी सुखों को तिलाञ्जलि दे देना। मन से उनका नाम विस्मृत कर देना। शरीर को कष्ट तथा क्लेश में झोंक प्रत्येक सुख को स्वप्नवत्

समझना, पैदल चलना, पृथ्वी पर सोना, माथा को हाथ तक न लगाना, किसी भी प्रकार की सवारी न करना, (चाहे सहस्रों कोस प्रखर धूप में चलना पड़े) नंगे पाँव, बिना छाता लिये चलना। मिला मिला लिया वरन् उपवास ही सही। फिर भोजन में पूर्णतया संयम व्रत पालन करना। भोजन अतिसाधारण और वह भी नितान्त अल्प। हर प्रकार के स्वादिष्ट पकान्न, फल फूल और वनस्पति सदा के लिए त्याग देना, भूलकर भी क्या मजाल कि उनकी ओर विचार जाने पावे। अपने शरीर ढापने को कुच्छ आवश्यक सीधे सादे कपड़े और कुच्छ सामान्य काष्ट-पात्र तथा धर्म पुस्तकों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का संग्रह तो क्या स्पर्श तक का भी त्याग कर देना। सफर हो या मुकाम हो, वन हो या पर्वत हो, मैदान हो या पर्वत हो, अपने हाथ से कुछ न बनाना। कहीं से बना बनाया भोजन जो कि नियमानुसार ग्रहण करने के योग्य हो, मिल गया तो खालिया, वरन् उपवास वह चाहे कितने दिनों का हो, परवाह नहीं। इसके अतिरिक्त क्या मजाल कि कोई साधारण से साधारण वस्तु भी अपने पास रक्खे। किसी समय कपड़े सीने को सूई की भी आवश्य-

अयोग्य, गृहस्थ चिन्ताओं तथा कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने और जन साधारण की आंखों में धूल झोंकने के लिए, किसी प्रकार के अपराध या ऋणादि से मुक्त होने की खातिर सत्यता को छिपाता हुआ, सिर मुंडवाकर साधु का वेप धारण नहीं करता। जैन धर्म इस कार्य को महान् पाप और कपट प्रतिपादन करता है। इस धर्म में प्रायः धनी मानी घरानों के और कई बार लाखों करोड़ों की सम्पत्ति के स्वामी, मां बाप के इकलौते बेटे, इस कार्य के लिए अग्रसर होते देखे गये हैं। वे नवयुवक तथा नवयुवतियां जिनके मन में वास्तविक और सच्चा वैराग्य तथा त्याग उत्पन्न हो चुका हो, साधुवृत्ति के पात्र समझे जाते हैं। वे तन, मन से शुद्ध होकर बड़े प्रेम और हार्दिक उत्साह से अपने गुरु जी के समीप दीक्षा ग्रहण करते हैं और वह भी बड़ी धूम धाम से, प्रायः सैकड़ों सहस्रों मनुष्यों के सन्मुख।

क्या यह बात कुछ कम महत्वपूर्ण है कि इधर दीक्षा ग्रहण करना और उधर सर्व संसारी सुखों को तिलाञ्जलि दे देना। मन से उनका नाम विस्मृत कर देना। शरीर को कष्ट तथा क्लेश में झोंक प्रत्येक सुख को स्वप्नवत्

समझना, पैदल चलना, पृथ्वी पर सोना, माया को हाथ तक न लगाना, किसी भी प्रकार की सवारी न करना, (चाहे सहस्रों कोस प्रखर धूप में चलना पड़े) नंगे पांव, बिना छाता लिये चलना। मिला खा लिया वरन् उपवास ही सही। फिर भोजन में पूर्णतया संयम व्रत पालन करना। भोजन अतिसाधारण और वह भी नितान्त अल्प। हर प्रकार के स्वादिष्ट पकान्न, फल फूल और वनस्पति सदा के लिए त्याग देना, भूलकर भी क्या मजाल कि उनकी ओर विचार जाने पावे। अपने शरीर ढापने को कुच्छ आवश्यक सीधे सादे कपड़े और कुच्छ सामान्य काष्ट-पात्र तथा धर्म पुस्तकों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का संग्रह तो क्या स्पर्श तक का भी त्याग कर देना। सफर हो या मुकाम हो, वन हो या पर्वत हो, मैदान हो या पर्वत हो, अपने हाथ से कुछ न बनाना। कहीं से बना बनाया भोजन जो कि नियमानुसार ग्रहण करने के योग्य हो, मिल गया तो खालिया, वरन उपवास वह चाहे कितने दिनों का हो, परवाह नहीं। इनके अतिरिक्त क्या मजाल कि कोई साधारण से साधारण वस्तु भी अपने पास रक्खे। किसी समय कपड़े सीने का सुई की भी आवश्य-

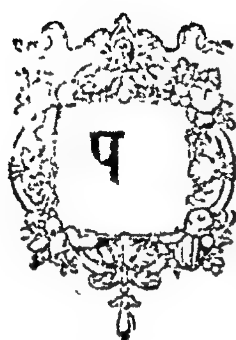
कता हो तो वह किसी से लेकर काम कर चुकने के पश्चात् उसी समय लौटा देना आदि २ किस प्रकार का कठिन व्रत है। हर जैनमात्र को ज्ञात है कि दीक्षा देने से पूर्व हर एक दीक्षार्थी को समझाया बुझाया जाता है। ताकि वह किसी प्रकार से अपरिचित न रहे। किन्तु क्या वह यथार्थ वैराग्य और त्याग का पुजारी (जिज्ञासु) इनसे एक क़दम भी पीछे हट जाता है ? नहीं, हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यदि यथार्थ त्याग संसार में कुछ है और आपको उसकी जीती जागती, बोलती चालती प्रतिमाएं देखने की इच्छा है, तो जैन साधु देख लीजिये। किसी की निन्दा जैन धर्म के प्रतिकूल है, अतः हमें अपनी लेखनी से इस पवित्र पुस्तक में मत मतान्तरों के वर्तमान साधुओं के विषय में लिखना समुचित प्रतीत नहीं होता। पर यहां पर यह निवेदन अवश्य करेंगे कि हर अजैन भाई जो इस पुस्तक का अध्ययन करे वह स्वयं अपने चित्त में जैन महात्माओं का मुकाबला वर्तमान दूसरे साधुओं से अवश्य करे। वह स्वयं ही वास्तविक परिणाम पर पहुँच जायेगा। जैन साधु के विषय में लेखक की इस निजी सम्मति को पढ़ कर यदि कोई यह मत प्रकट करे कि मैं जैनधर्म

और उसके साधु महात्माओं के विषय में किसी विशेष स्वार्थ के अधीन होकर लिख रहा हूँ, सो ऐसी बात नहीं है। बल्कि मैं निजी तौर पर बहुत समय से जैन साधुओं के यथार्थ त्याग, वैराग्य, स्वभाव और परोपकार का उपासक हूँ।



आपका दीक्षा महोत्सव

—:0:—



तिदेव, पिताजी वा अन्य सम्बन्धियों से आज्ञा प्राप्त कर आप लुधियाने श्री श्री १००८ श्री महासती श्री भगवान् देवी जी, श्री श्री १००८ श्री पूर्णादेवी जी तथा श्री श्री जीवादेवी जी वा चन्द अन्य छोटी आर्याओं के साथ पैदल पहुँच गईं। परमपूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री पूज्यवर श्री मोतीराम जी महाराज स्वर्गवासी वृद्धावस्था में उन दिनों वहाँ विराजमान थे। वहां पहुँच कर श्री महासती श्री भगवान् देवी जी ने श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्यवर मोतीराम जी के परामर्शानुसार दीक्षा की तिथि फल्गुन वदी १५ सम्वत् १९५३ बुधवार नियत की। श्री संघ ने जहां उचित था सूचना कर दी।

दीक्षोत्सव के दिन की शोभा का क्या कहना, उसे यह तुच्छ लेखनी वर्णन करने में असमर्थ है। यह महोत्सव उस समय वास्तव में सत्ययुग का दृश्य दिखा रहा था। लुधियाना नगर के निवासी और बाहिर के प्रसिद्ध २ सेठ,

धर्मी, व्यापारी, न्यायकर्ता और अधिकारी सब मिलकर इस शुभ तथा पवित्र दृश्य को देख २ कर आखों में तेज और हृदयों में आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव कर रहे थे। दीक्षा लेने से पूर्व हाथों में मेहदी लगाकर, हर प्रकार के बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र आपको गृहस्थियों द्वारा पहिराए गए। वह अवसर और वह दृश्य वास्तव में दर्शनीय था। महासती जी का उस समय का तेज और ज्योत्स्ना देखने योग्य थी। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों देवलोक की अप्सरा अपनी दैविक चन्द्रिका और तेज के साथ इस पृथ्वीतल पर मानवलोक के मनुष्यों का सांसारिक और आध्यात्मिक क्लेश विध्वंस करने के लिये लुधियाना क्षेत्र में अवतीर्ण हुई हैं। निःसन्देह वह दृश्य अवलोकनीय था। लेखनी में उसके लिखने की और रसना में उसके वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है।

पूर्णिमा के मयङ्क के सदृश सुन्दर आनन, भानुतुल्य तेज से प्रकाशमान होरहा था। उनके भाल पर ब्रह्मचर्य का तेजपुञ्ज नाच सा रहा था, जैसे कि त्रिलोकी की श्री तथा प्रतिष्ठा और राज्य प्राप्त कर रहा हो। निष्कलिङ्ग मुख मण्डल पर सांसारिक आनन्द परित्याग का दुःख

तथा निजबन्धुओं से सदैव के लिए पृथक् होने का शोक झलकता तक न था, और न कोई ऐसी चेष्टा ही दीखती थी जिससे चित्त तथा आत्मा की क्षुब्धता प्रतीत हो। प्रत्युत उसके विरुद्ध उनका मुख मण्डल तेज प्रभा से और आध्यात्मिक आनन्द से चमक रहा था। प्रत्येक उपस्थित भक्तजन यही अनुभव करता था कि सचमुच श्री द्रौपदां जी भावी भारतवर्ष में प्रकाशित तारा स्वरूप प्रमाणित होंगी। जैसा कि पश्चात् सत्य सिद्ध हुआ। उस दिन नगर में यही चर्चा थी कि देखो जैनधर्म की साधु-दीक्षा किस राजसी ठाट वाट से होती है। चूंकि धर्म के आदि काल में, प्रायः राजपुत्र और राजपुत्रियां, बड़े २ धनिक घरानों के बालक और बालिकाएँ ऐसे ही ढङ्ग से दीक्षित हुआ करती थीं। अतः वही रीति आज तक चली आरही है। उस दिन लुधियाना में एक मेला सा लगा हुआ प्रतीत होता था और आबालवृद्धवनिता उस उत्सव में सम्मिलित थे, और सती जी की दृढ़ता वा तेज को देखकर धन्य २ कह रहे थे। लेखक भी उस शुभ अवसर पर निम्नलिखित कविता द्वारा सम्मिलित होकर महामुनि महात्माओं की चरण रज अपनी आंखों पर लगाता है।

धन्य पिता जननी जिनके,
त्यागी आत्मा ने जन्म लिया।
संसारी वैभव सुख छोड़ा,
जग पावन सत्कर्म किया ॥

देख जगत् की नश्वरता को,
मन में दृढ़ वैराग्य हुआ।
आत्मोन्नति का यत्न करेंगे,
यह प्रण था स्वीकार किया ॥

जैन धर्म के कठिन नियम हैं,
मन वश करना पड़ता है।
किन्तु लगन थी पक्की मन में,
संयम सत्य विचार किया ॥

प्राणिमात्र के हितचिन्तन में,
दौड़ दौड़ मन जाता था।
सुख दुःख की परवाह न कुछ,
पंच महाव्रत धार लिया ॥

एक दफा जो मुख से निकली, चाहे थी बचपन की बात।
अपने पूर्ण संयम पथ में, पूरा वह इकरार किया ॥

तेज तपस्या के क्या कहन,
रवि शशि भाल चमकते थे।
वाणी में वह आकर्षण था,
लाखों का उद्धार किया ॥

पाप दूर होते दर्शन से, भापण मन को हरता था ।
धन्य देश वह जहां महा, आत्मा ने था अवतार लिया ॥
धन्य भाग्य सुनने वालों के, धन्य भाग्य जिन देखे आप ।
नाथ पापी के धन्य भाग्य, जिस हाथ जोड़ नमस्कार किया ॥



मेंहदी आदि लगाने तथा भूपणादि पहनने के अनंतर वे हर प्रकार से सुसज्जित होकर मण्डप में पहुँचीं। वहां आकर सम्पूर्ण आभूपण और बहुमूल्य वस्त्र तथा सिर के बाल, केवल थोड़े से बालों को छोड़कर उतार दिए गये। यथारीति साधुवेप धारण करके, मुख पर मुखपत्ती बांधकर और रजोहरण धारण करके श्री श्री परम-पूज्य मोतीराम जी महाराज के सन्मुख जाकर जो कि वहां विराजमान थे, उन्होंने संयमव्रत धारण करने की विनती की। श्री आचार्य महाराज ने साधुवृत्ति का पाठ पढ़ाया और श्री महासती श्री भगवान् देवी जी की शिष्या बनाकर उनकी सेवा में रहने की आज्ञा दी। अब जो थोड़े से शेप बाल थे, वे स्वयं श्री सती जी ने अपने पवित्र करों से लुञ्चन करके उन्हें अपने पास बिठा लिया। अहा ! वह देखने योग्य दृश्य था। अब धर्म आचार्यो

श्री महाराज ने अपनी शिष्या को भविष्य के लिए जो उपदेश दिया उसका संक्षिप्त आशय निम्नलिखित है–

देखो पुत्री ! तुमने अपनी रुचि से, बिना किसी दबाव के, अपने सम्बन्धियों तथा उन सांसारिक सुखों को जो तुम्हें अपने घर पर प्राप्त थे, वैराग्य की लग्न में शुद्ध सत्कारों के अधीन होकर, त्याग कर आज यह शुभ और पवित्र साधु वेष धारण किया है। तुम्हें ज्ञात है कि यह मार्ग अतिकठिन है, तीक्ष्ण खण्डे की धार पर चलना सहज है परन्तु जैनधर्म के साधुवेष को धारण कर, सच्चे सिद्धान्तों और नियमों का आचरण करना अतीव कठिन है। परन्तु पुत्री ! तुमने इस पवित्र वेश को धारण कर लिया है, इसलिए भविष्य के लिए इस बाने की लाज स्वयं तुम्हारे हाथ में है। मैं केवल शिक्षा दे सकती हूँ कि जिससे भगवान तुम्हें इस दृढ़ विश्वास तथा अचल निश्चय के फलस्वरूप सफलता प्रदान करें। हर समय सहायक रहते हुए तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करें। मैं आशा करती हूँ कि तुम अपने उद्देश्य में सफलीभूत होओगी। संसार को अपने उपदेश द्वारा सन्मार्ग दिखाओगी। अपने आपको सुमार्ग पर आरूढ़ करती हुई परमपद प्राप्त

करने का प्रयत्न करोगी। हे शिष्या! यह संसार नश्वर है। इसमें किसी जीव को सुख नहीं है। यह जीव जब तक सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र द्वारा स्वतः अपने आपको शुद्ध नहीं कर लेता तब तक अपने कर्मानुसार आवागमन के चक्र में फंसा हुआ हर समय जन्म मरण के दुःखों में फंसा रहता है। अयि शिष्या! संसार एक अथाह सागर है, मनुष्य का शरीर इसमें नौका के सदृश है।

इस तूफ़ानी जग सागर में,
यह काया नाव कहाती है।
क्षण में पूर्व की ओर चली,
क्षण में पश्चिम को जाती है॥
यह डगमग डगमग डोल रही,
सागर की लहरें उमड़ रहीं।
अपनी मस्तानी चाल में ये,
फिर भी कुछ फ़रक न लाती है॥
है सागर का विस्तार बड़ा,
नैय्या है यह छोटी सी।
पर इसे नहीं परवाह ज़रा,
गो लाख हिलोरे खाती है॥
परिणाम को अपने जानती है,
और ऊँच नीच पहिचानती है।

पर बेपरवाही में पडकर,
ये ज़रा नहीं घबराती है ॥
हैं हाथ पाव जो साथ लगे,
ये चप्पू हैं इस नैय्या के ।
ये चप्पू हरकत करते हैं,
और नाव झकोले खाती है ॥

ये सागर ऐसा सागर है,
इसकी मैं क्या तारीफ़ करूँ ।
दौड़ाये दृष्टि कोई कितनी,
सीमा न नज़र में आती है ॥
अब यह चप्पू घिस जाते हैं,
पञ्जर ढीला हो जाता है ।
बस हालत तब इस नैय्या की,
बहुत ही बुरी हो जाती है ॥
गो सदा थपेड़ों सहती है,
लहरों पे धक्के खाती है ।
पर प्रेम है इतना सागर से,
आगे ही कदम बढ़ाती है ॥
ज़ाहिर में सागर के सुख में,
डूबी रहती है हरदम ।
भ्रम व चक्कर में पड़ी रहती,
फिर भी इतनी इतराती है ॥

नाविक न सयाना मिलता है,
गुरु ज्ञान की होती चाह नहीं।
भटकती हुई यूं सागर में,
आयु अनमोल गँवाती है॥

फिर आखिर इक दिन आता है,
खाती है टक्कर बहुत बड़ी।
टक्कर खाते ही टूट फूटकर,
चूर चूर हो जाती है॥
परिणाम किसे मालूम नहीं,
इस नश्वर मानव जीवन का।
सब जानते हैं और मानते हैं,
पर खुदगर्ज़ी फँसाती है॥

अयि शिष्या! यह इस संसार सागर की माया है। भगवान् वीर तेरी मनोकामना पूर्ण करें। संसार को तेरे अस्तित्वसे, और तुझको सेवा, परोपकार और संयम द्वारा, वह अटल पदवी प्राप्त हो, जिसकी अभिलाषा ने तुझको इस कठिन मार्ग पर चलने और सांसारिक सुखों को छोड़कर यह शुद्ध, पवित्र साधुवेष धारण करने पर उद्यत किया है।

तद् उपरान्त श्री श्री १००८ श्री महासती भगवान् देवी जी महाराज ने अपनी नवदीक्षित शिष्या श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी को साधु के लक्षण वा पांच-महाव्रत विधिवत् समझाये, जिनका यथावत् वर्णन किया जाता है।

ग्यारह लक्षण साधु के, अब मैं करूँ ब्यान।
शुद्धचित्त आनन्द से, सुनिये देकर ध्यान॥
पहिला लक्षण साधु का, क्षमा करे हर हाल॥
सहन करे कर्कश वचन, दिल में हो न मलाल।
अवगुण सारे त्याग दे, करे सत्य से प्रेम।
शुद्ध पवित्र रहे सदा, दृढ़ कर राखे नेम॥
विद्याभ्यास करे सदा, तप अरु पर उपकार।
यही साधु की साधना, मस्त रहे अविकार॥
मन मारे सुख त्याग दे, रूआहिश होय न कोय।
जप तप भजन उपासना, लीन प्रभु में होय॥
जीवित ही मर जाय जो, वन में होते जान।
नाथ प्यारे साधु की, यही असल पहिचान॥
रूखी सूखी जो मिले, अमृत करके खाय।
तन ढकने को वस्त्र हों, और न आगे जाय॥
जैसी निन्दा पाप है, तथा खुशामद पाप।
हाकिम अर कोतवाल से साधु न करे मिलाप॥
ब्रह्मचर्य धारण करे, साधु सदैव जरूर।
काम क्रोध मे लोभ से, रह मोह से दूर॥

दुःख सुख में हो एक सा, मग्न रहे हर आन ।
रक्खे पर उपकार का, सदा चित्त में ध्यान ॥
किसी जीव को दुःख न दे, सबको सुख पहुँचाय ।
दया धर्म के मार्ग का, मन को पथिक बनाय ॥
शीतल नम्र स्वभाव हो, तजे सदा अभिमान ।
स्वयं कष्ट सहकर करे, औरों को सुख दान ॥
मार्ग दिखावे भ्रान्त को, यही साधु का काम ।
दुनिया दुःख की खान है, भजो जीव हर नाम ॥
राजविरोधी राह में, साधु न रक्खे पांव ।
इन टण्टों को छोड़ कर, फंसे न इनके दांव ॥
झूठ कपट पाखण्ड को, दिल से करदे दूर ।
तपबल सत्य विराग से, रहे सदा भरपूर ॥
यह लक्षण हैं साधु के, यह है साधु स्वरूप ।
जो इनसे विपरीत हो, वह केवल बहुरूप ॥



पञ्च महाव्रत



जैन धर्म में इन की बहुत महिमा है। वास्तव में वह है भी सत्य। प्रत्येक जैन महात्मा साधु साध्वी को इन पर पूर्णतया दृढ़ रहना पड़ता है। प्रत्येक मोक्षाभिलाषी जैन साधु को पांच महाव्रत धारण करने के पूर्व निम्नलिखित प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—

हे भगवन्! मैं शेष सारे जीवन के लिए प्रतिज्ञा करता हूँ कि हर तरह के पापमय योगों का तीन करण और तीन योग से त्याग करता हूँ। हे भगवन्! मैं मन, वचन और कर्म से स्वयं न पाप करूँगा, न कराऊँगा और न पापकर्म करने वालों का अनुमोदन ही करूँगा। हे प्रभो! मैं पाप-कर्म से पीछे हटता हूँ। आपकी साक्षी से अपनी निन्दा करता हूँ, और ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा को पापों से निवृत्त करता हूँ।

नोट— जो महानुभाव अपनी अनभिज्ञता से जैनधर्म पर नास्तिकता का आरोप करते हैं, वे इस प्रार्थना रूप प्रतिज्ञा को ध्यानपूर्वक पढ़ें। क्या इस प्रकार के

उच्च भावों से पूर्ण प्रार्थना करने वाला नास्तिक हो सकता है ? जैनधर्म की पुस्तकें पढ़ने और उसके साधु महात्माओं की जीवनचर्या को देखने से तथा अन्य वृत्तान्तों को ध्यानपूर्वक मनन करने के अनन्तर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ईश्वर को जिस रूप में जैनधर्म ने समझा है, वह हर विचार के मनुष्य को सन्तोषकर तथा रुचिकर प्रतीत होगा, यदि सत्य के निर्णय की अभिलाषा हो तथा हृदय और बुद्धि में साम्प्रदायिक हठ न समाया हो। ईश्वर है और आनन्दमय है। वह न किसी का मित्र है, न किसी का शत्रु। वह न सामान्य बातों पर खिन्न होता है, न प्रसन्न। न किसी से कुछ छीनता है, न किसी को कुछ देता है। इसके विषय में कर्म सिद्धांत अलग है। यह ऐसा प्रबल सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य को सन्तुष्ट कर सकता है। संसार के प्रबन्ध के लिए पृथक् २ शक्तियां अपना कार्य हर समय करती रहती हैं। ईश्वर इन सबसे सब तरह पृथक् उच्चतर और आनन्दमय है। जिस धर्म में इस प्रकार की प्रार्थना है, उसको समालोचक नास्तिक किस प्रकार कह सकते हैं ?

* प्रथम महाव्रत *

सव्वाउ पाणाइ वायाउ वेरमण ।

सर्वथा प्रकार से प्राणातिपात (हिंसा) से निवृत्ति करना अर्थात् मन से दुष्ट विचार न करना, वचन से किसी को दु खदायक शब्द न कहना तथा काया से किसी जीव का सहार न करना, स्वय जीवहिंसा से सर्वथा प्रकार से विमुक्त होना, औरों को हिंसा से निवृत्ति करने का उपदेश देना तथा जो प्राणी जीवहिंसा करते हैं उनका अनुमोदन न करना, पहला 'अहिंसा' महाव्रत है।

इसका बडा माहात्म्य है। यह महाव्रत मनुष्य को प्राणिमात्र का हितैषी बना देता है। हर जीव के साथ मैत्रीभाव उत्पन्न करा देता है। यही-व्रत सब धर्मों का मूल है। इससे हृदय शुद्ध तथा प्रकाशित होता है। यहां तक कि क्रूर हिंसक पशु भी प्रभावित तथा वशीभूत हो जाते हैं। शेर बकरी, बिल्ली चूहा, सर्प नेवला आदि इसके प्रभाव से एकत्र होकर परस्पर क्रीडा करते हैं। यह महाव्रत एक देदीप्यमान और पवित्र रत्न है, जिसको धारण करने से मन दर्पणवत् निर्मल हो जाता है। बडे २ ऋषि मुनियों ने इसकी महिमा शतमुख से बखान की है।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में इसकी महिमा वर्णन की है। इसके महत्त्व के लिए सज्जन लोग महाभारत अनुशासन पर्व देखें। इस व्रत की पांच भावनाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं–

१. प्रथम–वचन अर्थात् वाणी को वशीभूत करना। सुन्दर और मधुर भाषण करना, अर्थात् वचन से किसी जीव को क्लेश न पहुँचाना।

२. द्वितीय मन वश करना। मन से किसी भी जीव को दुःख या कष्ट न पहुँचाना, प्रत्युत किसी प्रकार की बुराई का विचार भी न करना।

३. तृतीय–उठते बैठते, सोते जागते, चलते फिरते, शरीर के अङ्गोपांग को फैलाते तथा सिकोड़ते सर्वदा यह प्रयत्न करना कि हमारी किसी भी अंग चेष्टा से किसी जीव को दुःख न पहुँचे।

४. चतुर्थ–४२ ब्यालीस दोषों से रहित शुद्ध अन्न जल का प्रयोग करना, अर्थात् अन्न जल ग्रहण करते समय भी अहिंसा का हर तरह ध्यान रखना। परोपकार और आत्म कल्याण के लिए मात्र शरीर को स्थिर रखने के लिए आहार

करना। निर्दोष अन्न जल लेना, किन्तु निर्दोष पर भी ममत्व भाव {आसक्ति} न लाना।

५ पञ्चम– चौकी, घास, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण आदि जो उपकरण, संयम (साधु जीवन) निभाने के लिए रक्खे हुए हों, उनका नित्यप्रति यथाविधि प्रमार्जन [सफाई] करना।

ये पहले महाव्रत की पाच भावनाएं हैं, इनके द्वारा इस महाव्रत को शुद्ध चित्त से धारण करे।



नोट– लेखक का निजी अनुभव है कि उसने एक वार श्वा, (कुत्ता) बिल्ली, तोता और कबूतर पाले। ये चारों सदा एक ही स्थान पर रहते और खाते पीते थे। जन साधारण देखते और चकित रह जाते।

✠ द्वितीय महाव्रत ✠

सव्वाउ मुसावायाउ वेरमणं ।

हर प्रकार के झूठ का त्याग। मन, वचन और कर्म से झूठ को त्याग कर सत्यव्रत धारण करना । न स्वयं झूठ बोलना, न दूसरे किसी से बुलवाना । न झूठ बोलने वाले का अनुमोदन करना द्वितीय सत्य महाव्रत है।

यह बात प्रसिद्ध है कि—

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदय सत्य है, ताके हृदय वह आप ।

अर्थात् 'नहि सत्यात्परो धर्मः' सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है । झूठ बोलने वाले का संसार में कोई विश्वास नहीं करता । न उसका मान और यश होता है । वह स्वयं अपनी ही दृष्टि में गिर जाता है । उसकी अन्तरात्मा उसको सदैव असत्य भाषण पर धिक्कारती रहती है । चूंकि उसकी आत्मा सर्वदा मलिन ही रहती है अतः परलोक में उसको सद्गति प्राप्त नहीं होती ।

झूठ परित्याग एक उत्तम गुण है । उत्तम तपश्चर्या और भक्ति है । जिसने इसका त्याग कर दिया मानों वह संसार समुद्र से पार होगया । झूठ के त्याग से सांसारिक

उन्नति भी खूब होती है। उसकी जिह्वा में सत्य की मुद्रा अङ्कित हो जाने के कारण जो कुछ वचन निकलते हैं वे यथार्थ हो जाते हैं। अतः साधारण जन उसे सत्यवक्ता कहने लग जाते हैं। इस महाव्रत की पाच भावनाएँ हैं—

१ प्रथम— क्रोधावरोध। क्रोध न करना, क्रोधपूर्ण शब्द उच्चारण न करना। क्योंकि 'क्रोधः शत्रु' क्रोध हमारा शत्रु है। शत्रुता से क्लेश और क्लेश से सत्यता आदि उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं। अत साधु को क्रोधावेश नहीं होना चाहिये।

२ द्वितीय— लोभ का त्याग। क्योंकि लोभ से सत्य असत्य, योग्य अयोग्य और उचितानुचित का ध्यान नहीं रहता।

३ तृतीय— भय का त्याग। साधु कभी भी न डरे। क्योंकि भयग्रस्त जीव के विचार निश्चल नहीं रह सकते। भय से सयम से पतित होने की भी सभावना होती है और भय सत्यादि गुणों का नाश कर देता है।

४ चतुर्थ— सत्यवक्ता साधु सर्व प्रकार के हसी ठट्ठे उपहासादि से पृथक् रहे। क्योंकि उपहास आदि करने से कभी २ लडाई अनिवार्य हो जाती है। लडाई से विवश

होकर झूठ बोलना पड़ता है। अतः साधु को उचित है कि हास्य सर्वथा न करे।

५. पञ्चम— विना सोचे समझे कोई शब्द मुख से न निकाले। कटु, पापकारी और कौतूहल जनक कोई शब्द न उच्चारण करना चाहिये। पहले बात को तोले और फिर मुख द्वारा बोले। तोलने का आशय यह है कि प्रथम निश्चय करले कि मेरे इस शब्द के कहने से श्रवण करने वाले का दिल तो न दुखेगा, उसे किसी प्रकार का क्लेश तो नहीं पहुँचेगा।



¶ तृतीय महाव्रत ¶

सव्वाउ अदिन्ना दाणाउ वेरमणं ।

सर्वथा अदत्तादान अर्थात् विना दी हुई वस्तु लेने का त्याग। साधु स्वय चोरी न करे, न करवावे, न चोरी करने वाले का अनुमोदन करे मन, वचन और कर्म से । यह बात सर्व साधारण को ज्ञात है और प्रत्येक व्यक्ति इसके लाभ, हानि से परिचित है। अत अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं ।

सक्षेप में अभिप्राय यह है कि चौर्य्य कर्म का परामर्श भी मन में सहस्रों दूषण उत्पन्न कर देता है। अत. साधु को इससे मन, कर्म, वचन से निवृत्त होना चाहिये। ताकि उसके विचारों में अशमात्र भी कलुपता न आने पावे। चोर्य कर्म से लोभ होना आवश्यकीय है, और लोभ सर्व अवगुणों की खान है, अत चोरी सर्वथा हेय है।

तीसरे महाव्रत की पाच भावनाएं हैं–

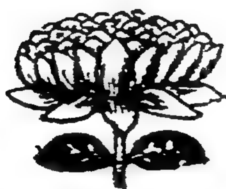
१ प्रथम– निर्दोष स्थान (जहा किसी प्रकार के विकृतिभाव के पैदा होने का भय न हो) में भी साधु महात्मा स्वामी की विधिपूर्वक आज्ञा लेकर ठहरे।

२. द्वितीय– उक्त स्थान में यदि प्रथम से ही तृण आदि पड़े हों तो भी मुनि विना आज्ञा उन्हें ग्रहण न करे।

३. तृतीय– मुनि चौकी, तख्तपोश आदि के लिए आप हिंसा न करे, न करावे, न अनुमोदन करे। विषम स्थान को सम न करावे, सम को विषम न करावे। तीनों योगों और तीनों करणों से अर्थात् मुनि अपने सुख के लिये पर आत्मा को पीड़ित न करे।

४. चतुर्थ– जो आहार पानी आदि मुनिओं के लिए भिक्षा में लाया हो, जब तक गुरु की आज्ञा पूर्वक उनका विभाग नहीं हो तब तक उसको ग्रहण नहीं करना।

५. पञ्चम– गुरु, तपस्वी, स्थविर आदि की विनय करना।



* चतुर्थ महाव्रत *

सव्वाउ मेहुणाउ वेरमणं ।

पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करना। मैथुन न स्वय सेवन करना, न दूसरों को सेवन करने का उपदेश देना, न अनुमोदन करना, मन, वचन और कर्म से। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, चतुर्थ महाव्रत है।

इसका माहात्म्य और महत्व अत्यधिक है। सब धर्मों में इसका गौरवपूर्ण स्थान है। इसकी अनुपमेयता की सब ने भूरी २ प्रशंसा की है। श्री हेमचन्द्राचार्य जी अपने योगशास्त्र में लिखते हैं–

प्राणभूत चरित्रस्य पर ब्रह्मैककारणम्।
समाचरण ब्रह्मचर्य पूजितैरपि पूज्यते ॥

अर्थ– ब्रह्मचर्य चरित्र का प्राणभूत है। मोक्ष का कारण है। इसको पालन करने वाला पूज्यों का भी पूज्य है। और भी–

हरति कुलकलङ्क लुम्पते पापपङ्कम्,
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमति सुरवर्ग हन्ति दुर्गोपसर्गम्,
रचयति शुचिशील स्वगमोक्षौ सलीलम् ॥

अर्थ– ब्रह्मचर्य कुल के कलङ्क को दूर करता है, और पापरूपी कीचड़ को नष्ट कर देता है, पुण्य बढ़ाता है, प्रशंसा कराता है। ब्रह्मचारी को देवता भी नमस्कार करते हैं, और भयानक उपसर्गों से रक्षा करता है और ब्रह्मचारी स्वर्ग और मोक्ष शीघ्र प्राप्त करता है।

इसकी भी पांच भावनाएँ हैं–

१. प्रथम– साधु स्त्रियों की काम और राग बढ़ाने वाली बातों को न कहे।

२. द्वितीय– स्त्रियों की सुन्दरता, उनके शरीर के अङ्गोपाङ्ग को न देखे, और उनके हास्यादि पर न ध्यान दे। यदि अकस्मात् दृष्टि पड़ भी जाय तो जिस प्रकार रवि की ओर देखने पर तत्क्षण दृष्टि पीछे हट जाती है उसी प्रकार तत्काल अपनी दृष्टि को नीचा करले। किसी भी विचार के अधीन होकर स्त्रियों तथा उनकी सुन्दरता पर न ध्यान लगाये, न देखे, न देखने की अभिलाषा ही करे।

३. तृतीय– पूर्व भुक्त भोगों (दीक्षा धारण से पहिले उपभुक्त सांसारिक सुख और इन्द्रिय विषयादि) और विषय भोगों को भूलकर भी स्मरण न करे। न उनकी

ओर मन को चलायमान करे। क्योंकि ऐसा करने से योग [मन, वचन, काय] अधीन नहीं रहते और संयमपालन अर्थात् इन्द्रियनिरोध अतिकठिन हो जाता है। बुरे विचार पैदा होकर चित्त को व्याकुल कर देते हैं। जब चित्त व्याकुल हो गया तो फिर बना बनाया कार्य विध्वंस हुआ समझो।

४ चतुर्थ– ब्रह्मचारी घी से स्निग्ध, कामोत्पादक आहार तथा कोई ऐसी वैसी वस्तु न ग्रहण करे। क्योंकि ऐसी वस्तुओं के प्रयोग से विषयाग्नि उत्तेजित होने का भय रहता है। अपने आपको वश में करना असम्भव हो जाता है। इसलिये ब्रह्मचारी को अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये ऐसे भोजन से नितान्त निवृत्ति आवश्यक है। सादा भोजन और सादा रहन सहन ही ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य पालन करने में सहायक हो सकता है।

५ पञ्चम– ब्रह्मचारी को आवश्यक है कि अपने शरीर का शृङ्गार आदि न करे। बालों को कंघी तेलादि से न सवारना आदि। किसी प्रकार की शारीरिक शोभा स्वयं न करे, न शृङ्गार किये हुए को विशेषतया देखे।

* पञ्चम महाव्रत *

सव्वाउ परिग्गहाउ वेरमणं ।

हर प्रकार से परिग्रह अर्थात् ममत्व [आसक्ति] का त्याग। साधु को उचित है कि स्वयं परिग्रह रक्खे नहीं, दूसरों से रखवावे नहीं और रखने वालों का अनुमोदन करे नहीं, मन, वचन और कर्म से सर्वदा इसका पालन करे। यह पांचवां महाव्रत कहलाता है ।

इस व्रत को धारण करने से सन्तोष और निर्लोभ गुण प्राप्त होते हैं। दिनरात की कल्पना (चिन्ता) और क्लेश अर्थात् व्यर्थ की दौड़ धूप समाप्त हो जाती है । इसके धारण करने से मनुष्य निर्भय हो जाता है । वह चाहे कहीं चला जाए उसको कोई कुछ नहीं कह सकता। यहां तक कि चोर और डाकू भी उसको कुछ नहीं कहते, प्रत्युत उसके तेज से भयभीत होकर सुधर जाते हैं। सांसारिक क्लेशों का मूल धन, पृथिवी और स्त्री है । यह व्रत धारण कर मनुष्य इन तीनों से मुक्त हो जाता है। ऐसी अवस्था में साधु अपनी आत्मा में ज्ञान और आनन्द का अनुभव करता है। जो मनुष्य परिग्रह से मूर्छित हो जाते हैं वे सदा दुःखी, उदास, शोकयुक्त और चिन्ताग्रस्त रहते

हैं। वृद्ध हो जाने पर भी इन सबसे छुटकारा नहीं होता, कहा भी है–

> अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं,
> दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
> वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं,
> तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥

व्याख्या– शरीर भले ही गल जाए, सिर के बाल श्वेत हो जांए, दांत गिर जाए और अशक्ति के कारण लाठी लेकर ही क्यों न चलना पड़ जाय, परन्तु ऐसी बुढापे की अवस्था में भी आशा का त्याग नहीं होता।

ममत्व के वशीभूत होकर मनुष्य अपने हर प्रकार के सुख आदि का त्याग कर, अपने देश तक को भी छोड़ कर चल देता है। अन्य देशों में, पर्वतों की उच्च चोटियों पर, भयानक हिम तथा क्रूर पशुओं से पूर्ण वनों में खाक छानता फिरता है। इस पर भी अनर्थ यह कि अपने स्वल्पमात्र लोभ के लिए मनुष्यता तक को नष्ट कर देने में नहीं हिचकिचाता। इस परिग्रह के कारण क्लेश, वैर विरोध, ईर्षा, अहङ्कार आदि अनेक प्रकार के अवगुण उत्पन्न होते रहते हैं। राग, द्वेष, क्रोध, लोभ, मान, माया

आदि दुष्कर्म भी इससे ही फलते फूलते हैं। अतएव इस ममत्व भाव का त्याग साधु के लिए परमावश्यक लिखा है। परिग्रह में मूर्छित हुआ मानव योग्य अयोग्य, न्याय अन्याय, कार्य और अकार्य का विचार नहीं कर सकता अर्थात् उसकी बुद्धि पूर्णतया मलिन हो जाती है। वह सत्कर्म और असत्कर्म की पहिचान करने योग्य नहीं रहता आशय यह है कि उसकी अन्तरात्मा मृतप्राय हो जाती है। उसको यह भी ख्याल नहीं रहता कि यह सामग्री चोरी की है तथा यह धन कुत्सित कर्मों द्वारा उपार्जन किया हुआ है। यह सम्पत्ति अन्य जीवों को दुःख तथा क्लेश देकर प्राप्त की गई है आदि २। यह सब कुछ अधर्म है। परन्तु उस पर तो आठों याम दौलत एकत्र करने का स्वार्थरूपी भूत सवार रहता है। उसके मन में धर्माधर्म का विचार रहता ही नहीं। लेकिन अन्त में उसे तीव्र दुःख और आत्मिक क्लेश का सामना करना पड़ता है तथा सांसारिक अप्रतिष्ठा, लज्जा, शोक, राज्य का भय और उस पर भी अन्तरात्मा की धिक्कार भी। किन्तु शोक! जिस समय आत्मा लोभ से प्रभावित हो जाती है, उस समय वह धर्माधर्म की परवाह नहीं करता। उस समय इनकी

परवाह तो क्या करेगा उलटा धर्म कर्मादि के, नाम तक को भूल बैठता है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि चोर को चोरी के दण्ड और वधकर्ता को दण्ड स्वरूप फांसी का यद्यपि ज्ञान होता है तथापि चोर चोरी करता है और घातक वध करने से नहीं हटता। क्यों ? केवल लोभ के ही कारण तो। यह लोभ एक ऐसा जादू है जो बुद्धि पर ऐसा आवरण डाल देता है कि मनुष्य सब कुछ जानता हुआ भी कार्याकार्य से त्रस्त नहीं होता। दूर न जाइये- धन को ही देखिये- यह चलती फिरती धूप छाया है जो कभी किसी एक स्थान पर नहीं रहती। सहस्रों क्या लाखों ही उदाहरण सन्मुख उपस्थित हैं। इस धन को चोर चुरा लेता है। अग्नि तथा जल नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। जो आजकल धनाढ्य है वही पहले भिखारी था। जो कल साहूकार था, सैकड़ों हजारों का लेन देन करता था; वही आज रोटी को लाचार, मुट्ठी भर चनों को बिलबिलाता नजर आता है। जिसके दरवाजों पर हाथी घोड़ों के ठाठ खड़े रहते थे, वही मार्ग की खाक छान रहा है। यह कोई छिपी बात नहीं, नित्यप्रति का प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला दृश्य है, जो जनमात्र की दृष्टि से

गुज़रता है। फिर क्या कारण ? इस धन के साथ मनुष्य का इतना प्रगाढ़ मोह है ? इसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उचित तथा अनुचित कार्य करने पर उद्यत हो जाता है ? कहना पड़ेगा कि वह केवल लोभ और उसका प्रभाव ही है जो सनेत्र को अन्धा, कानों वाले को बहरा और ज्ञानवान् को मूर्ख बना देता है। इस लोभ का ममत्व ऐसा कुत्सित कार्य है कि लोभी मनुष्य न दिन को सुख प्राप्त करता है, न रात्रि को शान्तिपूर्वक सो सकता है। उसे न यहां सन्तोष है, न परलोक में। हर्ष तो उसके समीप तक नहीं आने पाता। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक कोई भी सुख तथा शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। विद्वानों का कथन है कि– लोभात् संजायते कामः, अर्थात् लोभ से लालसाएँ और वासनाएँ उन्नत होती रहती हैं। इनका बढ़ना ही दुःखों का मूल है, यह जन साधारण का नित्यप्रति का अनुभव है। अतः साधु को तो लोभ के विचार का स्मरण मात्र भी न करना चाहिये।

परिग्रह को वशीभूत करने के लिए साधक के लिए संतोष धारण करना अर्थात् 'संतोष एव पुरुषस्य परं

निधानम्' इस कथन को पूर्णतया अपनाना, सद्विद्या पढ़ना और तप करना परमावश्यक है। इन तीनों से लोभ रूपी अग्नि शान्त की जा सकती है। जब तक लोभरूपी अग्नि को शान्त न किया जाय तब तक साधु सच्चा साधु नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह लोभ प्रत्येक पाप की जननी है। इस व्रत की पांच भावनाएं हैं—

१ प्रथम— साधु श्रुतेन्द्रिय के विषयों को वश करे अर्थात् मनोहर, रुचिकर और मधुर गायन तथा शब्द श्रवण करके उन पर मुग्ध न हो। उन पर राग न करे। भद्दे तथा अरुचिकर शब्द तथा गायन सुनकर उन पर द्वेष न करे। आशय यह कि साधु रसीला अथवा भद्दा गाना आदि श्रवण कर एक रस अर्थात् शांत भाव रहे। राग द्वेष का विचार अपने हृदय में उत्पन्न तक न होने दे।

१ द्वितीय— चक्षुरिन्द्रिय के विषय में इन्द्रियों को वश में करे अर्थात् सुन्दर वस्तु देखकर प्रसन्नता और भद्दी वस्तु देखकर द्वेष प्रकाशित न करे।

३ तृतीय— घ्राणेन्द्रिय के विषयों को वश में करे। सुरभि पर राग और असुरभि पर द्वेष प्रकाशित न करे।

४. चतुर्थ—रसेन्द्रिय को वश में करे अर्थात् सुस्वादु भोजन प्राप्त होने पर प्रसन्न और अस्वादु आहार पर रुष्ट न हो। समय पर जैसी वस्तु मिल जाय उसके सम्बन्ध में राग द्वेष का प्रकाश किए बिना ही अनासक्त भाव से उसे ग्रहण कर लेना चाहिये।

५. पञ्चम— स्पर्शेन्द्रिय के विषयों को वश में करे अर्थात् सुकोमल स्पर्श होने पर प्रसन्न और कठोर स्पर्श प्राप्त होने पर द्वेष का प्रकाश न करे। आशय यह कि साधु हर अवस्था में अपने मन को समान रक्खे।

⁜ षष्ठम महाव्रत ⁜

सव्वाउ राइ भोयणाउ वेरमणं।

छटा व्रत रात्रि भोजन त्याग है। साधु रात्रि के समय किसी प्रकार का भी भोजन ग्रहण न करे। तीन करण और तीन योग से इस संयम का पालन करे। आशय यह कि रात्रि के समय खाने और पीने की वस्तुओं में कुछ यत्न नहीं रहता क्योंकि रसोई घर से कई प्रकार के अदृश्य जीव भोजनादि में प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः साधु के लिए रात्रि को किसी भी प्रकार के खाने पीने का तीव्र प्रतिबन्ध किया गया है।

नोट—ये उपर्युक्त पांच महाव्रत हैं जो प्रत्येक जैन साधु को अवश्यमेव आचरण करने पडते हैं। ये पांच महाव्रत क्या हैं ? वास्तव में पांच यज्ञ हैं अर्थात् उच्चावस्था प्राप्ति में पांच बलिदान हैं। जिन पर पूर्ण रीतिसे आचरण करने वाला साधक अपने ध्येय को अतिशीघ्र प्राप्त कर लेता है। इनका आशय यही है कि साधु पांच इन्द्रियों को वशीभूत करे।

परन्तु विदित रहे कि यह बड़ा भारी त्याग और आत्म बलिदान है। यह प्रत्येक ऐसे वैसे व्यक्ति का कार्य नहीं। यह वही कर सकता है, जो सचमुच और वास्तविक अर्थों में सच्चा साधु हो। हर प्रकार के सांसारिक विषयों को सच्चे हृदय से त्याग कर जीवित ही मृत्यु का द्वार खटखटाता हुआ सच्चे अर्थों में निर्वाण पद की अभिलाषा रखता हुआ, उस परमपद के निमित्त बड़े से बड़ा बलिदान करने को कटिबद्ध हो। लाखों करोड़ों पर लात मारकर और राजसी ठाठ-बाट तथा सुखों को त्यागकर, बड़े २ सेठ साहूकारों के इकलौते लड़के जब प्रसन्नतापूर्वक साधु वेष धारण कर लेते हैं, तो सच्ची लग्न के कारण वे इन कठिन महाव्रतों का अनायास ही पालन करते हैं। लेखक अब इन पांच महाव्रतों की महिमा लिखता हूं।

पञ्च महाव्रतों की महिमा

—○:0:○—

ये पंच महाव्रत हैं पंच महायज्ञ,
इन्हें जैन साधु ही कर सकता ।
जो सुख को दुःख को एक समझ,
है जीते जी ही मर सकता ॥१॥
है यज्ञ नाम कुरवानी का,
कुरवानी दुनियावी सुख की ।
जो मोह माया के जालों से,
वचकर विषयों से लड़ सकता ॥२॥
जो आंख कान के होते भी,
गोया न देखता सुनता है ।
हां सेवा परोपकार की खातिर,
दुःख सुख है सह सकता ।३।
परवाह न खाने पीने की,
परवाह न सोने जगने की ।
जो जान अपनी की बाज़ी को है,
परोपकार में धर सकता ॥४॥
जो धन दौलत को ठुकराकर,
यह सुख दुनयावी छोड़ सभी ।

पालन कर कठिन तपोव्रत का,
भक्ति तन मन से कर सकना ॥५॥
है मुख्य नियम जिसका केवल,
अहिंसा परमो धर्म ।
जो भव-सागर में हमदर्दी की,
नैय्या पर है तर सकना ॥६॥
ईश्वर को आनन्दमय और,
कर्मचक्र को अविरल समझकर ।
आवागमन फल कर्म मानकर,
विषयों से है लड़ सकना ॥७॥
प्राणी मात्र का हमदर्द,
जो दुःख औरों के दूर करे ।
यह समझ जैन के अन्दर है,
जो दुःख औरों के हर सकना ॥८॥
वह जैन साधु है देव रूप,
क्या मैं उसकी तारीफ़ करूँ ।
जो सत्य भावना में जीवे,
और अन्त समाधि मर सकना ॥९॥
सब तज कर संसारी धन्धे,
मन भक्ति में ही लीन करे ।
ये कोई नहीं है कर सकता,
एक जैन साधु ही कर सकता ॥

बहुत खोज के बाद नाथ ने,
असलीयत को पाया है ।
खोज खोज के बाद कहीं,
इस मन का दुःख मिटाया है ॥
दास नाथ यह चाहता है,
सब भाई मन को पूत करें ।
श्री जैन साधु के दर्शन कर,
निज मन के मल को दूर करें ॥
दर्शन करके उपदेश सुनो,
फिर देखो क्या कुछ होता है ।
हो दूर मैल मन अपने की,
मन जाग पड़े जो सोता है ॥

सती जी के उपदेश के अनन्तर मण्डप जय जयकारों की गम्भीर ध्वनि से गूंज उठा ।

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यवर श्री मोतीराम महाराज जी ने मुनिवृन्द सहित वहां से उपाश्रय के लिए प्रस्थान किया । तथा श्री श्री १००८ श्री भगवान् देवी जी महाराज अन्य आर्याओं के साथ नवदीक्षिता आर्या श्री द्रौपदां जी को साथ लेकर जहां ठहरी हुई थीं, वहां चलीं उनके साथ २ सहस्रों भक्त स्त्री पुरुष जय जयकार करते हुए जारहे थे, वह दृश्य देखने योग्य था ।

जैन साधुवृत्ति

दीक्षा धारण करने के बाद का वृत्तान्त, कुछ विशेष घटनाओं के सहित चातुर्मास्यों का संक्षिप्त विवेचन।



ब तक दीक्षा धारण नहीं की थी, तब तो कुछ और ही बात थी अर्थात केवल वैराग्य और उसकी हार्दिक लग्न। परन्तु जिस समय दीक्षा धारण करली, बात कुछ और की और ही हो गई। मुख की प्रभा और मस्तक का तेज दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। सच्चे त्याग, सच्चे वैराग्य और मन की वास्तविक लग्न के अधीन कठिनव्रत और तपस्या के बल ने चेहरे पर आध्यात्मिकता का वह रंग चढ़ा दिया कि दास में उसकी वास्तविकता का चित्र खींचकर दिखलाने की शक्ति नहीं। जो कोई भी एकबार श्री महासती आर्या श्री श्री १००८ श्री द्रौपदा जी का दर्शन कर लेता कृतार्थ हो जाता। उसके त्रिविध-ताप शान्त हो जाते। जिन भाग्यवान्

गृहस्थों को उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनका कथन है कि जिस समय श्री श्री १००८ श्री महासती श्री द्रौपदां जी महाराज अपने आसन पर ध्यान में प्रवृत्त हुआ करती थीं, उस समय उनका तेज सूर्य सदृश प्रखर हुआ करता था। उनके मुख पर यौवन और ब्रह्मचर्य जनित श्री खेला करती थी आंखों में लज्जा का प्रकाश और वचन में माधुर्य था। धर्मानुष्ठान में इस प्रकार का प्रबल प्रेम और श्रद्धा देखकर तथा साधु जनोचित तीव्र कठिन व्रत पालनादि करते, उनका स्तुत्य संयम देखकर मुख से स्वतः धन्य २ निकल पड़ता था।

दीक्षा से कुछ दिन अनन्तर श्री श्री १००८ श्री महासती श्री भगवान् देवी जी महाराज ने अन्य आर्यिकाओं सहित अपनी दोनों नवदीक्षिता [श्री श्री पूर्णादेई जी और श्री द्रौपदां जी] शिष्याओं को साथ लेकर लुधियाना से प्रस्थान किया। गुजरवाल, रायकोट, मालेरकोटला, धुरी, सङ्गरूर, सनाम, मूनक, जीन्द आदि में विचरती हुई रोहतक पधारीं। वहां उन दिनों श्री श्री जैनाचार्य्या प्रवर्तिनी पद विभूषिता श्री श्री १००८ श्री बाल-ब्रह्म-चारिणी महासती श्री पार्वती जी और श्री १००८ श्री

महासती श्री राजमती जी महाराज अन्य आर्याओं सहित विराजमान थीं। गणावच्छेदक श्री श्री १००८ श्री स्वामी मायाराम जी महाराज भी अपने अन्य साधु मुनि, रानों के साथ विराजमान थे। श्री प्रवर्तिनी महाराज तथा स्वामी मायाराम जी महाराज श्री द्रौपदां जी के वैराग्य को देख कर अतिप्रसन्न हुए।

प्रवर्तिणी जी महाराज का सम्वत् १९५४ का चातुर्मास्य देहली शहर में हुआ। अतएव- श्री भगवान् देवी जी ने भी, जो कि उक्त प्रवर्तिनी जी महाराज का शिष्या थीं, उन्हीं के साथ चातुर्मास्य किया। इस चातुर्मास्य में श्री द्रौपदां जी महाराज ने श्री दशवैकालिक जी सूत्र, श्री उत्तराध्ययन जी सूत्र, संस्कृत व्याकरण सन्धिप्रकरण, पचीस बोल का थोकडा, तेंतीस बोलका थोकडा, नव तत्व, छत्तीस द्वार, छ काया का थोकडा, पांच समिति तीन गुप्ति के थोकडों का अभ्यास किया, तथा साधुवृत्ति के अन्य साधनों का भलि-भांति परिचय प्राप्त किया। श्री प्रवर्तिणी महासती जी महाराज का उपदेश सुनने के लिए देहली के बडे २ आदमी, सेठ साहूकार और विद्वान् पुरुष आते थे। वे श्री द्रौपदां जी

महाराज की तरुणावस्था में उस तीव्र वैराग्य मुद्रा को देखकर धन्य २ करते थे।

चातुर्मास्य व्यतीत होने पर श्री प्रवर्तिनी जी महाराज की सेवा में अलवर, जयपुर, अजमेर, पाली और जोधपुर के बहुत से भाइयों ने विनती की कि महाराज आप पञ्जाब देश में पञ्जाबी जनता को तारने को सतत कृपा किया करते हैं। अब हमारी विनती को स्वीकार कर हमारे देश को भी पवित्र करें तथा हमारा जन्म सफल करें। दयावती प्रवर्तिनी श्री सती जी ने उन भाइयों की विनती को स्वीकार करके अपनी शिष्या श्री भगवान् देई जी से कहा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ उधर चलो। श्री भगवान् देई जी ने विनयपूर्वक विनती की कि महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। परन्तु आपसे मैं यह आज्ञा चाहती हूँ कि आर्या द्रोपदां जी अभी नई २ दीक्षिता हैं, तिस पर उनकी आयु भी अत्यल्प है सो यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इनको लेकर इधर ही विचरूँ। उन्होंने खुशी से आज्ञा दे दी और आपने चातुर्मास्य संपूर्ण होने पर मारवाड़ की ओर विहार किया। श्री भगवान् देवी जी महासती श्री प्रवर्तिनी जी की आज्ञानुसार

शाहदरा और यमुना पार विचरती हुईं बडसद, करनाल कैथल से होकर पटियाला, नाभा और मालेरकोटला में धर्मोद्योत करती हुईं लुधियाना पधारीं। सम्वत् १६५५ का चातुर्मास्य लुधियाना में श्री श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री मोतीराम जी महाराज के चरणों में दूसरे मकान में हुआ। इस चातुर्मास्य में आर्या श्री द्रौपदा जी महाराज ने बहुत कुछ विद्या प्राप्त की। श्री परम पूज्य जी से और धर्म आचार्या जी से, श्री उत्तराध्ययन सूत्र का अर्थ, उववाई जी, कल्पसूत्र, अन्तकृद्दशाग सूत्र, अनुत्तरो वाई जी सूत्र, दशाश्रुत स्कन्धसूत्र और अठानवे बोल का अल्प बहुत्व, मोटा नामठिया, संजडा योजन, सिजनाद्वार योनिद्वार, रूपी अरूपी, संजेय निपजठे और बहुत से थोकडे बोल विचारों का अभ्यास किया। अर्थात् इस चातुर्मास्य में महासती श्री द्रौपदा जी ने बहुत कुछ विद्या ग्रहण की। इसके पश्चात् चातुर्मास्य समाप्त होने पर लुधियाना से चलकर मछीवाड़ा होती हुईं रोपड़ पधारीं। यहीं श्री द्रौपदा जी महाराज ने अपने पवित्र मुखारविन्द से सर्व प्रथम व्याख्यान फर्माया। जिसको श्रवण कर रोपड़ निवासी भाई बहिन अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक आर्य

समाजी भाई से ईश्वर कर्ता के विषय में बहुत प्रश्नोत्तर हुए। स्त्री समाज में सामायिकादि थोकड़ा बोल सिखाकर बहुत उपकार किया। स्त्रियों को धर्मोपदेश भी देती रहीं। रोपड़ से प्रस्थान कर श्री श्री १००८ श्री भगवान् देवी जी महाराज नालागढ़ पधारीं। वहां श्री श्री १००८ श्री गोविन्दराम जी महाराज ठानेचार विराजमान थे, उनके दर्शन किए। श्री स्वामी गोविन्दराम जी महाराज तथा श्री स्वामी रलाराम जी महाराज ने श्री भगवान् देवी जी महासती के प्रति श्री द्रौपदा जी के विषय में फरमाया कि आपकी यह शिष्या बड़ी भाग्यवती और सूर्यवत् धर्म को प्रकाशित करने वाली है। नालागढ़ से चलकर रोपड़, खरड़ होती हुईं बनूड़ पधारीं। वहां कुछ दिन महासती श्री भगवान् देवी जी के व्याख्यान होते रहे, जिनसे वहां के निवासियों ने अतिलाभ उठाया और साथ ही श्री द्रौपदा जी ने भी अपने मनोहर व्याख्यानों से अमृतवर्षा करके संतप्त और शुष्क हृदयों को तृप्त किया। श्री द्रौपदां जी महासती के पवित्र मुखारविन्द से जो कोई व्याख्यान सुनता था, वह चकित हो जाता था। क्योंकि उनका एक एक शब्द हृदय और बुद्धि पर प्रभावशाली होता था।

यहा श्री द्रौपदा जी महासती ने गुरुणी जी से रामायण, श्री राजप्रश्नीय, श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, श्री विपाक जी सूत्र प्रभृति विद्याध्ययन किये। पुनः इस स्थान से वे पटियाला पधारीं। वहा पर श्री श्री १००८ श्री पूज्यपाद भावी आचार्यवर श्री पूज्य मोहनलाल जी महाराज का चातुर्मास्य स्वीकार हो चुका था; इसलिए श्री महासती भगवान देवी जी ने भी अपना यह चातुर्मास्य पटियाला में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। हालाकि वनूड निवासी श्रावकों ने अत्यधिक विनती की थी कि यह चातुर्मास्य वहां करने की कृपा करें। किन्तु एक तो पटियाले वाले भाइयों के प्रबल अनुरोध करने से, द्वितीय पूज्य श्री सोहनलाल जी से विद्याभ्यास के लिये अच्छा अवसर देखकर, महासती जी ने १९५६ का चातुर्मास्य पटियाला में किया। इस चातुर्मास्य में श्री सती द्रौपदा जी ने श्री आचाराङ्ग सूत्र, साधुगुणमाला सार्थ, देवाधिदेव रचना सार्थ और देवरचना सार्थ ज्ञान प्राप्त किया और साधुगुणमाला, देवाधिदेव रचना कण्ठस्थ की। साथ ही संस्कृत व्याकरण का पूर्वार्ध पढ़ा। चातुर्मास्यानन्तर यहा से वे धुरी, सामाना और अम्बाला

आदि होती हुईं साढ़ौरा पहुँचीं और सम्वत् १६५७ का चातुर्मास्य वहीं किया। इस चातुर्मास्य में प्रातः व्याख्यान श्री सती भगवान् देवी जी फरमाती रहीं और मध्याह्न के समय श्री द्रौपदां जी। आपके मुख से प्रायः ऐसे अमूल्य शिक्षाप्रद उपदेश निकलते थे कि जिन्हें श्रवण करने से हृदय पवित्र और मस्तिष्क जागृत हो जाता था। इस चातुर्मास्य में धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ और श्री द्रौपदां जी ने संस्कृत व्याकरण का उत्तरार्ध भी पढ़ा।

पुनः इस चातुर्मास्य के पश्चात् साढ़ौरा से अम्बाला पटियाला, नाभा, मलेरकोटला आदि स्थान पावन करती हुईं लुधियाना पधारीं। यहां परमपूज्य श्री श्री १००८ श्री जैनाचार्य श्री पूज्य मोतीराम जी महाराज के दर्शनों का लाभ लिया। यहां श्री श्री महासती श्री भगवान् देवी जी और श्री द्रौपदां जी महाराज के उपदेश से श्रीमती लक्ष्मीबाई जी को वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। श्री महासती जी ने भली भान्ति समझाया कि जैन साधु या साध्वी जीवन अतिकठिन है। जीवित ही मर जाना है, आदि २। किन्तु लक्ष्मीबाई का धर्मरङ्ग उत्तरोत्तर बढता ही चला गया। वैराग्य सुरभि उनके रोम २ में समा गई जो किसी प्रकार भी न्यून न होसकी।

सम्वत् १९५८ का चातुर्मास्य श्री महासती श्री भगवान देवी जी ने श्री तपस्विनी पूर्णादेवी जी और श्री द्रोपदा जी आदि अन्य आर्याओं के साथ सनाम में किया। यहां श्रीमती लक्ष्मीदेवी जो वैरागिन को जिन्हें कि धर्म का रङ्ग भली भांति चढ चुका था, श्री महासती जी ने साधु जीवन के सब नियमों और संयम की रीति अच्छी तरह समझाई। यहा से विहार करके सङ्गरूर पधारीं। वहा के लाला काशीराम, तुलसीराम, कृपाराम और पन्नालाल जी आदि सर्व सङ्घ ने वैरागिन लक्ष्मीबाई जी की धर्मरुचि और वैराग्य देखकर महासती जी से प्रार्थना की कि लक्ष्मीबाई जी का दीक्षोत्सव इसी जगह मनाया जाए। अतः लक्ष्मीबाई जी का दीक्षोत्सव बड़ी धूम धाम से सङ्गरूर में मनाया गया।

सम्वत् १९५९ का चौमासा—

श्री श्री प्रवर्तिनी जी श्री १००८ श्री पार्वती जी महाराज के साथ यह चातुर्मास्य कांधले में हुआ। इस जगह श्री प्रवर्तिनी जी महाराज से श्री महासती द्रोपदा जी ने बहुत कुछ विद्या का लाभ उठाया। श्री सुयगडाङ्ग जी, श्री प्रश्न व्याकरण, श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जीवाभिगम,

अनुयोग द्वार, व्यवहार जी इन छः सूत्रों का पाठ अर्थ सहित किया और श्री प्रवर्तिनी जी श्री १००८ श्री पार्वती जी महाराज ने भी श्री द्रौपदां जी को विद्यादान देने में कोई कसर न रक्खी । क्योंकि श्री द्रौपदां जी महाराज विनयी तथा धर्म, वैराग्य आदि विषयों की शिक्षा लेने की पूर्ण उत्साही थीं । अत एव महासती जी दिल से चाहती थीं कि जहां तक हो सके इनको विद्या पढ़ाने में किसी तरह की कमी न रहने पाए । श्री प्रवर्तिनी जी महाराज जैसी उत्तम पढ़ाने वाली और श्री द्रौपदां जी जैसी बुद्धिमती होश्यार पढ़ने वाली, बस फिर क्या था, सोने पर सोहागा की उक्ति चरितार्थ होगयी । आशय यह कि श्री प्रवर्तिनी जी महाराज की कृपादृष्टि से, श्री द्रौपदां जी को इस चातुर्मास्य में बहुत कुछ विद्या प्राप्त करने का अवसर मिला । चातुर्मास्य में भाई बहिनों ने भी धर्मप्रेम का अच्छा परिचय दिया। महासती जी का चातुर्मास्य जिस उत्साह से भाइयों ने करवाया था, उससे बहुत अधिक काम हुआ अर्थात् धर्म का प्रचार बहुत हुआ ।

सम्वत् १९६० का विनौली जिला मेरठ का धर्म आचार्या श्री महाभाग्यवती १००८ श्री भगवान् देवी जी

महाराज और श्री १००८ श्री मथुरो जी महाराज (आपकी बड़ी गुरु बहन), श्री पूर्णादेवी जी महाराज श्रीमती मानकौर जी महाराज, आप [श्री द्रौपदा जी महाराज] और श्री लक्ष्मी जी महाराज इन छ सतियों का चातुर्मास्य हुआ। दोपहर के व्याख्यानों में आपने श्री अनुत्तरो वाई जी, वा रामराम भाइयों और बाइयों को सुनायी, जिसका असर जैन अजैन सब पर हुआ। बाइयां को सामायिक प्रतिक्रमण थोकडे वगैरह भी सिखाए। चातुर्मास्य की रौनक, आपकी शांत प्रकृति तथा समाधि और विद्या हर एक के हृदय में घर कर गई थी। आप विद्याभ्यास करने में ही समय व्यतीत करती थीं, किसी समय भी अपना समय वृथा नहीं नष्ट करती थी।

सम्वत् १९६१ का चातुर्मास्य रियासत पटियाला के शहर समाना में श्री भगवान् देवी जी महाराज, श्री पूर्णादेवी जी महाराज, छती ऋद्धि के त्यागी श्री द्रौपदा जी महाराज और आर्या श्री लक्ष्मीदेवी जी महाराज का हुआ। इस जगह मन्दिर मार्गी और स्थानकवासियों में झगडा चल रहा था। दोनों ओर खूब प्रश्नोत्तर आदि होते रहते थे। परन्तु आप उनको इस प्रकार शांति से

समझाती थीं कि वे आपके उत्तर से संतुष्ट हो जाते थे। चातुर्मास्य अच्छी तरह शांति के साथ व्यतीत हुआ। धर्मोपदेश और धर्मप्रचार भी खूब हुआ।

सम्वत् १९६२ का चौमासा गुजरांवाला में भाइयों की आग्रहपूर्ण विनती पर महासती श्री १००८ बाल ब्रह्मचारिणी पार्वती जी महाराज, श्री १००८ श्री भगवान् देवी जी महाराज, श्री १००८ श्री राजमती जी महाराज, श्री पूर्णदेवी जी महाराज, श्री द्रौपदी जी श्री लक्ष्मी जी, श्री हीरादेवी जी और श्री पन्नादेवी जी वा अन्य आर्याओं का हुआ।

आप श्री महासती जी से ज्ञान प्राप्त करतीं और सदा विद्याभ्यास और विनय में ही ध्यान रखती थीं। आपकी धर्म आचार्या श्री भगवान् देवी जी को, जो प्रवर्तिनी जी महाराज की महाभाग्यवती, बहुगुणशालिनी, धैर्यवती शिष्या थीं, अकस्मात् ही बुखार ने आ घेरा। थोड़े ही दिनों में उस ज्वर ने अपना कार्य कर लिया अर्थात् काल का ग्रास बना दिया। आप उनसे धर्म स्नेह और गुरुभक्ति का भाव बहुत रखती थीं। उनकी रुग्णावस्था देखकर आप बहुत व्याकुल हो गईं। चिकि-

त्सादि भी की गई, परन्तु काल के आगे किसी की पेश नहीं चलती। श्री भगवान् देवी जी महाराज ने अन्त में सम्वत् श्री का प्रतिक्रमण करके आलोचना निंदा कर खिमत खमावना की और महासती जी के चरणों में शीश झुकाती हुई, भगवान् का स्मरण करती हुई, समाधि-मरण को प्राप्त हुई अर्थात स्वर्गलोक सिधार गई। उनके वियोग से आपको अतीव दुःख वा शोक हुआ, परन्तु आप बड़ी विचारशीला थीं। उस दुःख वा शोक को ज्ञान समाधि से दूर करती थी। महासती जी का स्मरण आपको हरदम रहता था। वे आपको प्रिय-शिष्या समझती थीं। आपने इस चातुर्मास्य में ज्ञान और विद्या का खूब लाभ लिया। उन दिनों अमृतसर निवासी लाला ईश्वरदास जी ओसवाल जो वैराग्य की लहर उठने पर अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि त्यागकर विरक्त होगए थे, उनकी कन्या दैवयोग से विधवा हो गई। उसका नाम सोमादेवी था और वह स्यालकोट निवासी लाला पूरणशा जी के सुपुत्र लाला पन्नालाल जी से विवाही हुई थी। स्संयोग से आपको पति का वियोग हुआ। तब ईश्वरदास जी उसको अधिकतर अपने पास ही रखते थे और धर्मोपदेश

देकर सान्त्वना देते रहते थे । उनका संयम में दृढाभ्यास होगया था । उन्होंने चातुर्मास्य की समाप्ति के समीप पूज्य श्री १००८ श्री सोहनलाल जी और श्री युवराज काशीराम जी महाराज से प्रार्थना की कि महाराज ! मैं संयम लेना चाहता हूँ, परन्तु सुपुत्री सोमादेवी अभी नादान है और उस पर पति वियोग का दुःख आपड़ा है, अतः उसे छोड़ने का विचार संयम में अन्तरायभूत होरहा है । इस बात को सुनकर पूज्य श्री ने फ़रमाया कि आपका ऐसा विचार है तो सोमादेवी को भी आप साध्वी बना दें । ईश्वरदास जी ने कहा उसका ख्याल हो तो मैं तैयार हूँ । पूज्य श्री जी ने सोमादेवी से यह बात कही तथा संयम का उपदेश दिया । तत्पश्चात् यह विचार किया कि यह भद्र स्वभाव की कन्या है अतः इसको आर्या द्रौपदां जी की शिष्या बनाना चाहिये । यह विचार कर ईश्वरदास जी ने प० सोहनलाल ब्राह्मण को गुजरांवाला भेजा और सती जी से प्रार्थना की कि ईश्वरदास जी और पूज्य श्री का विचार है कि ईश्वरदास जी की लड़की सोमादेवी जी आर्या श्री द्रौपदा जी की शिष्या हो । सो आप कृपा करके अमृतसर पधारें ।

श्री द्रौपदां जी ने यह विनती स्वीकार की और विचरती हुई अमृतसरक्षेत्र पधारीं सोमादेवी जी को उपदेश दिया और महोत्सव से पिता पुत्री की दीक्षा हुई। पूज्य श्री ने ईश्वरदास जी को, युवाचार्य मुनि श्री काशीराम जी महाराज का शिष्य बना दिया। धर्म का प्रचार बहुत हुआ। व्याख्यान और उपदेश बराबर होते रहे। पूज्य श्री जी और महासती जी से जैन अजैन सबको धर्मलाभ हुआ। यहां पर दीक्षा महोत्सव के अनन्तर श्री महासती जी और आप जंडयाला गुरु, कपूरथला, जालन्धर, बङ्गा आदि में विचरती हुई और धर्म प्रचार करती हुई होश्यारपुर पधारीं।

सम्वत् १९६३ के चातुर्मास्य के लिए होश्यारपुर वालों की ओर से विनती हुई और उन्होंने महासती श्री प्रवर्तिनी जी से आज्ञा प्रदान करने की प्रार्थना की उन्होंने भाइयों की विनती पर श्री द्रौपदा जी को होश्यारपुर चातुर्मास्य करने की आज्ञा सहर्ष दे दी।

आपकी मधुर वाणी और मस्तक के तेज पर जनता मुग्ध थी। दोनों समय व्याख्यान होते थे। आपके उपदेश को सुन २ कर दिन प्रतिदिन रौनक अधिक होती

जाती थीं। आप अमरकोष, संस्कृतसाहित्यादि विद्या पढ़ती रहीं। ५०, ६० श्लोक प्रतिदिन कण्ठस्थ करती थीं। आपकी बुद्धि देखकर पण्डित जी भी यही कहते थे कि हमने विद्यार्थी बहुत देखे परन्तु सती जी की विद्वत्ता और गम्भीरता बड़ी विलक्षण है। इस चातुर्मास्य में धर्मोद्यम बहुत हुआ।

सम्वत् १९९४ का चातुर्मास्य भटिंडा में हुआ। आप गीदड़बाह, भाईकोट आदि क्षेत्रों को पवित्र करतीं, भटिंडा पधारीं। आपको उस समय पेट में कुछ तकलीफ थी। अतः वहां पर कुछ औषधि आदि की। पूर्व इस क्षेत्र में चातुर्मास्य कम होते थे। आपके उपदेशों से भाइयों पर धर्म का अत्यधिक प्रभाव हुआ और आज इस क्षेत्र में साधु महात्माओं का आना और चातुर्मास्य करना यह आपकी ही कृपा का फल है। इस चातुर्मास्य में रोड़ी और आस पास के ग्रामों के स्त्री पुरुष बहुसंख्या में आपके दर्शनार्थ आते थे और उपदेश का लाभ उठाते थे। आपके उपदेशामृत से उनकी जैनधर्म में अतिश्रद्धा हुई और आपने उन्हें जैनधर्म के नियम समझाए और उनकी व्याख्या की।

जैन धर्म के सिद्धान्त

१ परमेश्वर.—

सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अयोनि, अजर, अमर, अमूर्ति, निराकार, निष्कलङ्क, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त, परमपवित्र, सदा एक रस, आनन्दस्वरूप, हर प्रकार के दूषणों से रहित, अनन्त सुख का भण्डार और आनन्दमय है। संसार के निर्माण और संहार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

२ जगत —

जीव और अजीव का समूह, जीव योनि रूप जगत अनादि अनन्त है। उसका न तो कभी पूर्ण अभाव था और न उसको कभी किसी ने विशेष समय में बनाया। जो इसमें जीव और अजीव पदार्थ हैं। उनकी पर्याय (अवस्थाएँ) सर्वदा परिवर्तन होती रहती हैं।

३ जीव —

जीव (आत्माएँ) अनन्त हैं। संसारी जीव और पुद्गल (प्रकृति) का सम्बन्ध अनादि है। जीव कर्मबन्धन को स्वयं अपनी शुभ तथा अशुभ क्रियाओं द्वारा किया करता है। उसका फल चाहे अच्छा हो या बुरा, शराब के नशे की भांति उसे अवश्यमेव प्राप्त होता है। सुमार्ग में चल कर, निष्कर्म होकर अर्थात

[illegible]

४. [illegible]

[illegible]

५. [illegible]

६. [illegible] जिनेन्द्रदेव [illegible] [२३] है

७. अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांच महा-व्रतों को पालन करने वाले शास्त्रानुसार नियमों पर चलने वाले, परोपकार करने वाले सच्चे साधु गुरु हैं।

८. जो संसार में गिरते हुए जीवों को बचावे और मोक्ष मार्ग प्रदर्शक हो, ऐसा वीतराग कथित सच्चा धर्म है। जिसके अहिंसा, संयम, तप, ज्ञान, दान, शील, भावना आदि लक्षण हैं।

हर एक संसारी जीव का आत्मा अपने समान है। अत एव जो दुःख देने वाली बातें हमें अहितकर प्रतीत होती हैं, वे

में दूसरों के सम्बन्ध में नहीं करनी चाहिएँ। 'आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्'। दुःखी जीवों के दुःख दूर करना और अहिंसा अर्थात् किसी जीव को क्लेश न पहुँचाना, ही सबसे बड़ा धर्म है। पानी छानकर पीना चाहिये। रात्रि-भोजन त्याग करना चाहिये, मास मदिरा का सेवन कभी नहीं करना चाहिए, इत्यादि २।

९ शास्त्रों को सुनने वाले, धर्म पर श्रद्धा रखने वाले, सन्मार्ग पर चलने वाले और परोपकारी गृहस्थ श्रावक कहलाते हैं।

१० साधु साध्वी, श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध सङ्घ को तीर्थ मानते हैं। उनके मिलकर विचार करने को यात्रा मानते हैं।



यों भटिंडा में जैनधर्म का काफी प्रचार हुआ। वहाँ के जैन भाइयों ने चातुर्मास्य में मिष्टान्न आदि द्रव्य में भी पर्याप्त खर्च किया। बहुत उत्साह के साथ चातुर्मास्य समाप्त हुआ और वहा से विहार करके जीरा, सुलतानपुर, कपूरथला, जंडियाला होती हुई अमृतसर पधारीं। वहाँ महासती प्रवर्तिनी जी महाराज विराजमान थीं। उनके

चरणों की ही सेवा स्वीकार कर आप उन के साथ नारो-वाल, पसरूर होती हुई स्यालकोट पधारीं। आप महा-पुरुषों के पधारने पर धर्म का बहुत उद्योत हुआ और यहां आप श्री द्रौपदां जी महाराज ने श्री महासती प्रव-र्तिनी जी से श्री भगवती सूत्र का अभ्यास किया । आप का चातुर्मास्य स्यालकोट में स्वीकृत हुआ। परन्तु जम्मू वाले भाइयों की विनती पर श्री प्रवर्तिनी महासती जी ने अपना चातुर्मास्य जम्मू स्वीकृत फरमाया। स्यालकोट चातुर्मास्य में आपने व्याख्यानों से जनता को मुग्ध किया एक व्याख्यान का विषय यहां लिखा जाता है।

श्री सती जी महाराज चमड़े के उपयोग के विषय में विवेचना करती हुई कहती हैं—

हा ! भारतवर्ष ! हे देवभूमि ! हे महात्माओं की जन्मभूमि भारत ! तेरे प्राचीन वैभव तथा शोभा और वर्तमान दुर्दशा को देखकर रोना आता है । जब तक तू भारतवर्ष था, वास्तव में धर्म कर्म और आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत था। अन्य देश तुझसे लाभान्वित होते थे । किन्तु हा ! खेद ! जब से तू भारतवर्ष के स्थान पर हिन्दुस्तान बना, तेरे वे सर्वगुण न्यूनातिन्यून होते गये।

न वह धर्म रहा न वह कर्म, न वह विद्या रही न वह ज्ञान रहा। वह आध्यात्मिक सत्य और वह वास्तविकता भी न रही। यह क्या गया केवल हिन्दुस्तान का हिन्दुस्तान ही।

आह! वह भी समय था जब चमड़े का पहनना तो एक ओर यदि कोई व्यक्ति चमड़े का स्पर्श भी करता था तो उस समय अपने आपको अपवित्र मानने लग जाता था और जब तक कपड़ों सहित स्नान आदि न अपने आपको शुद्ध न कर लेता, उस काल के मध्य कुछ खाना पीना तो दूर रहा श्वास तक लेना पाप मानता था। किन्तु हे भारतवर्ष! आज क्या दशा है और क्यों? क्या तू वही भारतवर्ष है, जो आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व था या दो सहस्र वर्ष ही पूर्व था? जरा प्राचीन इतिहास उठा-कर, भूत और वर्तमान का मुकाबला करने के अनन्तर उत्तर देना।

आह! कहाँ तो चमड़े के केवल स्पर्श से अपवित्र होना और कहाँ आज हाथ पाँव और सिर पर चमड़ा पहन कर अन्न जल ग्रहण करना गौरव और प्रतिष्ठा में

प्रविष्ट होगया है । हा ! जरा बतला तो सही कि तेरी यह चर्मपूजा, नित्यप्रति कितनी गाय, भैंस, भेड़, बकरी और मृगादि अन्य अनेक उपयोगी जीवों के प्राणहरण का कारण बन रही है ? आह ! दुर्भाग्य से प्रथम पांव के लिये चर्म का जूता बना, जो आज बढ़ते २ हमारे सिर पर आ पहुँचा है और हम बड़े शौक से उसे अपने मस्तक पर लिए फिरते हैं । और तो और हमारे हाथ, जिनका हर समय मुँह से सम्बन्ध रहता है, चमड़े के तस्मे बिना शोभा ही नहीं देते ! जो कण्ठ कभी चन्दन, रुद्राक्ष और मोतियों की मालाओं से शोभित होता था, आज मच्छली के नर्म पट्ठों से बने हुए कालर आदि से सुसज्जित दृष्टि-गोचर हो रहा है । क्या इस धर्मभूमि के रहने वालों के लिए, यह बात लज्जा के योग्य नहीं ? हा ! तेरी इस फैशनोपासना और धर्म की अरुचि ने न जाने कितने सहस्र मूक जीवों की जान ली है और आयन्दा नित्य कितने ही मूक जीव तेरे इस फैशन की वेदी पर भेंट होने वाले हैं । उन मूक पशुओं में गाय भारतवासियों को यों सम्बोधन कर रही है कि ओ फैशन के मतवाले ! भारत भूमि के निवासी कृतघ्न और स्वार्थी जैन्टलमैन ! गुलाम

बन्दे ! जरा कान खोलकर सुन ! माना कि मैं पराधीन हूँ, लाचार, बेवश और तेरे बन्धन में हूँ, किन्तु और तो कुछ नहीं, तो न्यूनातिन्यून जिह्वा तो विचारों के प्रकाश के लिए बाध्य है ! पर मैं जो कुछ भी कहूँगी, सत्य बात, कहूँगी, इसमें झूठ कहीं भी न होगा।

(१)

ओ रे अन्धे बन्दे ! तेरी,
करणी तुझे सुनाती हूँ।
तेरी निर्दयता का वर्णन,
करके तुझे जगाती हूँ॥

(२)

अपने दूध दही माखन से,
मैंने तुझको पुष्ट किया।
और सर्वथा सुख पहुँचाया,
हर प्रकार सन्तुष्ट किया।

(३)

मेरे बच्चे हल में जुतकर,
खेती पैदा करते हैं,
करके इतना घोर परिश्रम,
तेरा संकट हरते हैं॥

(४)

मेरा गोबर तक भी तुझको।
कितना सुख पहुँचाता है।
मेरा सारा जीवन तेरे,
कितने काम बनाता है॥

(५)

स्वयं घास खाकर तुझको,
अमृत सा दूध पिलाती हूँ।
फिर भी तेरी स्वार्थ बुद्धि से,
कितना कष्ट उठाती हूँ॥

मेरे चमड़े तक से भी तू, अपना स्वार्थ चलाता है ।
पश्चात्ताप न करता दिल में, ज़रा नहीं शरमाता है ॥
जब तक रहती दूध पिलाती, तब तक घास खिलाता है ।
बूढ़ी देख मुझे दुष्टों के, हाथ बेचने जाता है ॥
ओ बेरहम कृतघ्न मनुज, किस बल पर पाप कमाता है ।
क्यों तेरा मन नहीं पिघलता, क्यों राक्षस बन जाता है ॥
तेरी जग्टलमैनी पर है, लाख बार धिक्कार तुझे ।
लानत है तेरे जीवन पर, बारबार फटकार तुझे ॥
अगर न ऐसे राक्षस निर्दय, नर जग में ज़ुल्म कमाते ।
जाति हमारी कितनी बढ़ती, कितना सुख वे भी पाते ॥
अरे पापियो ! सोचो तो अपना तन कितना प्यारा है ।
क्यो न तुम्हारे क्रूर चित्त मे, आता ख्याल हमारा है ॥
एक कबूतर के बदले, श्री मेघरथ जी त्यागी ने ।
खुद अपने को पेश किया था, रहम भरे वैरागी ने ॥
करनी ऐसी कौन करे, दिखलाई जैसी बड़भागी ने ।
यह सिफ़त जैन के अन्दर है, गा सच्च सुनाया रागी ने ॥
यह जैनधर्म का उच्च कर्म, हर जीव की रक्षा करने का ।
परोपकार और जीव की रक्षा, नियम के पीछे मरने का ॥
रहमदिली हमदर्दी में नहीं कोई मुकाबला करने का ।
यही जैनधर्म का उच्च नियम, संसार से पार उतरने का ॥
गर चाहते हो तुम भारत फिर से, बागेबहिश्त गुलज़ार बने,
फूल खिलें रूहानियत के, हर गुल बूटा बेखार बने ॥

रहम रयादारी, हमदर्दी का,
यह फिर अ वार बने ।
जैन धर्म की शरण पकड़ो,
फिर देखो अग्नि गुलजार बने।

बस दिल बात कर खतम यहां,
जो कहना था मैं कह चुकी।
पड़कर वश खुदगर्जों के,
जो जुल्म सहना था सह चुकी॥

तेरे इस चमड़े के शौक में,
मेरी नदी खून की वह चुकी।
छोड़ ख्याल आ शरण जैन,
बस यही उपाय जो कह चुकी॥

() कवित्त ()

जैन प्रचार जब होवे नर नार,
जीवहत्या की तार टूट जाय आप २ ही ।
न दण्ड न पाखण्ड न कोई राज का,
दण्ड पाप सन्ताप छूट जाय आप २ हीं ।
जैन के जो शरण आन निर्वाण पद पावे,
जाल आवागमन टूट जाय आप २ ही ।
सच्ची बात नाथ प्यारे जैन जीत हाथ प्यारे,
दुःख ते कलेश छूट जाय आप २ ही॥

सम्वत् १९६५ के चातुर्मास्य में रियासत जम्बू को पावन किया। इस चातुर्मास्य में श्री पूर्णादेवी जी महाराज, श्री द्रौपदां जी महाराज, श्री लक्ष्मी जी महाराज, श्री सोमादेई जी महाराज, पधारीं। बाई और भाइयों के उत्साह का पार नहीं था। आपके पधारने पर दोनों वक्त व्याख्यान होता था और श्रोताओं से सब स्थान भर जाता था। आपके व्याख्यान प्रायः समाज सुधार पर होते थे। दो यहां दिये जाते हैं—

❋ विवाह सम्बन्धी कुरीतियां और अपव्यय ❋

संसार कभी एक अवस्था में नहीं रह सकता और न सांसारिक मनुष्यों की स्थिति एक समान हो सकती है। कोई धनाढ्य है, कोई निर्धन है, किसी का कारोबार तेज है और किसी का मन्दा। इसी प्रकार इनके विवाहादि के व्यय भी अपनी २ शक्ति और योग्यतानुसार होने चाहिएँ।

यह कितने दुःख और शोक की बात है कि केवल अत्यल्प काल की वाह २ के लिए, ऋण लेकर भी इन कुरीतियों पर उदारता से व्यय किया जाय और अपने आप

को तथा अपनी सन्तान को सम्पूर्ण आयु के लिए क्लेश-ग्रस्त किया जाय।

धनाढ्य अपनी सामयिक शोभा और वाह २ कराने के लिए निष्प्रयोजन अपव्यय करते हैं और उनको देखकर मध्यम स्थिति के सफेदपोश गृहस्थों को भी वैसा ही करना पड़ता है। अतः धनवानों को चाहिये कि वे कभी भी कुरूढ़ियों पर अधिक व्यय न करें। प्रत्युत उस धन को जो उन्होंने स्वल्प काल की वाह वाह पर निरर्थक नष्ट हो, धर्म कार्यों में लगाएँ। अपने गरीब भाइयों की सहायता दें। अनाथ, भूखे, नंगे, रोगी, अशक्त और ऐसे मनुष्यों की सेवा में, जो किसी कारण से कार्य व्यवहार के अयोग्य होगए हों व्यय करें। गौ शालाए, कन्या पाठशालाए, अनाथालयादि उक्त रुपयों से सञ्चालित किए जाए। जिससे समाज को लाभ हो। धर्मलाभ हो और यश कीर्ति भी बढ़े तथा निरर्थक जाने वाले रुपये अच्छे कामों में प्रयुक्त हों। संसार में अभयदान और सुपात्रदान एक उत्कृष्ट श्रेणी के दान हैं परन्तु विद्यादान सबसे बड़ा दान माना गया है। उचित रीति से धन व्यय करने से सब दानों का लाभ हो सकता है। भांड, रण्डी

और आतशबाजियों आदि पर जो व्यय किया जाता है वह नितान्त आवश्यक है। इससे धर्म की हानि भी होती है और फल भी कुछ नहीं होता। ऐसे लोग जैन धर्मियों से धन प्राप्त करके मांस मदिरा आदि पर व्यय करते हैं। विचार करिए कि इसका पाप आखिर किसको लगता है? सो मैं चाहती हूँ कि जैन जगत से; इन सर्व हानिकारक कुरीतियों को नष्ट किया जाय। विवाहादि अवसरों की रीतियां सुधारी जाएँ। जो कि हर एक भाई सरलता से पूर्ण कर सके और ऋणादि लेने का अवसर प्राप्त न हो।

वह धन जो कि हानिकारक कुरूढ़ियों की भेंट किया जाता है, सन्तान की शिक्षा में लगाया जाय तथा उससे अन्य धर्म कार्य किए जाएँ। ऐसे नियम प्रचारित किए जाएँ, जिन पर चलने से हर जैन का गृहस्थ जीवन सुख और स्वर्ग का आदर्श उपस्थित करे, न कि वह झांकी, जो कि हर प्रकार के दुःखों के स्रोत के नाम से प्रसिद्ध है, दिखलाए और इन निरर्थक कुरूढ़ियों पर अपव्यय करने के फलस्वरूप आजन्म हमारा जीवन अत्यन्त दुःखमय और साक्षात् नरकरूप ही बना रहे।

* स्त्रियों की स्यापा आदि कुरूढ़ियों पर विचार *

सहस्रों कुरूढ़ियों के अन्तर्गत, जो दुर्भाग्य से जैन तथा हिन्दू स्त्रियों में हैं, यह स्यापा भी एक अत्यन्त बुरी रूढ़ि है जो इस भयानक रूप में स्त्रियों में प्रचलित है कि लेखनी उसका वृत्तान्त लिखते कम्पायमान होती है। आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो जाती है। मृत्यु अनिवार्य है, इस पर किसी का वश नहीं चलता। प्रिय बन्धु बान्धव तथा सम्बन्धियों की असामयिक मृत्यु से दुःख होता तो अवश्य है, परन्तु इसका प्रकाश जिस रीति से किया है, वह उससे भी दुःखप्रद है। जिसको कि अन्य शब्दों में 'स्यापा' कहा जाता है। यह स्यापा क्या होता है? यथारीति स्त्रियों की एक प्रकार की कसरत होती है। एक स्त्री बोलती जाती है, शेष सब श्रेणी-बद्ध होकर स्वर-ताल के साथ जोर २ से अपनी २ छाती पीटती जाती हैं। उस समय न किसी छोटे बड़े का भेद है, न लज्जा है, न पर्दा है जिन स्त्रियों के कभी किसी ने हाथ, पांव तक नहीं देखे होते, उनके नंगे सिर, खुले बाल, छाती बल्कि नाभी तक पेट नग्न देखे जाते हैं।

राजमार्ग हो, गली या बाज़ार हो, कोई परवाह नहीं। वे अपनी कसरत में ऐसी मस्त और दत्तचित्त होती हैं कि किसी छोटे बड़े के आने जाने तक का ध्यान नहीं बल्कि कई बार तो पीटती हुई स्त्रियां बेसुध होकर गिर भी पड़ती हैं। जिनको महाप्रयत्न से मुंह में जलादि डालकर चैतन्य किया जाता है। सबसे बड़ा अन्धेर तो यह है कि उस समय कई स्त्रियां अपनी उस अवसर की निर्मूल बड़ाई के लिए बलपूर्वक छाती पीट २ कर भविष्य के लिए अपने आपको रोगी बना लेती हैं। एक दूसरी से वैर विरोध का बदला लेने का अवसर भी उस समय प्राप्त हो जाता है। वे खूब जोर २ से उस बेचारी शोकाकुल स्त्री को पिटवातीं और पीटने पर बाध्य करतीं हैं। यहाँ तक कि गर्भवती तक का कुछ विचार नहीं रक्खा जाता। स्यापे के परिणाम स्वरूप गर्भपात की कई घटनाएँ सुनने में आई हैं। इस दुष्ट रीति का प्रचार अधिकतर पञ्जाब प्रान्त में देखा जाता है। दूसरे प्रान्तों में ऐसा प्रबल स्यापा नहीं होता।

कौन कहता है कि मरने वालों का शोक प्रकाशित न किया जाए? किन्तु यह दुःख प्रकाशन की कैसी रीति है

कि जिसमें न लज्जा रहे न धर्म रहे, न पर्दा और प्रतिष्ठा रहे। अन्य धर्मावलम्बी तथा अन्य देशों के लोग देखकर उपहास करें।

हा! उस समय का दृश्य भी कैसा भयानक और हृदय विदारक होता है, जबकि दुर्भाग्य से किसी युवती के युवक पति का स्वर्गवास हो जाए। उस समय के स्यापे के दृश्य को आखें देख नहीं सकतीं। हा! उस दुःखी विधवा को सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र पहना कर, मध्य में बिठाकर पुन जो कुछ किया जाता है, लेखनी तथा जिह्वा में उसको वर्णन करने की शक्ति नहीं।

उस समय बलवान हृदय वालों का चित्त व्याकुल होने लग जाता है, अन्यों की तो कोई क्या कहे? यों हि हिन्दु जाति मे विधवा की जो दुर्दशा होती है, वह अकथनीय है; परन्तु उस समय जो कुछ व्यवहार किया जाता है, उससे बढ़कर निर्दयतापूर्ण व्यवहार और कुछ नहीं हो सकता। चूंकि यह स्यापा और उसकी रीति शास्त्रविरुद्ध है तथा अन्यदेश में इसका प्रचार नहीं है और स्वास्थ्य-नाशिनी, प्रतिष्ठा, लज्जा और पर्दा की घातिनी है, अत. इसका जहा तक हो सके शीघ्र ही नाश करने का प्रयत्न

करना चाहिये। इस प्रकार के प्रबल स्यापे और छाती पीटने से तो परलोक गत आत्मा भी कांप उठती है।

धन्य २ की ध्वनि नगर में गूंजती थी। आपके उपदेश से से भाइयों ने एक पाठशाला भी स्थापित की। आपने बाइयों को सामाहिक प्रतिक्रमण थोकडों का अभ्यास कराया। चातुर्मास्य में धर्म का पर्याप्त प्रचार हुआ। आप चातुर्मास्य पूर्ण होने पर स्यालकोट पधारीं। स्यालकोट के लाला भोलूशाह की पुत्रवधू धनदेवी जी धर्मपत्नी स्वर्गीय लाला पन्नालाल जी ने आपका उपदेश श्रवण किया। उस उपदेश का ऐसा प्रभाव हुआ जैसे सोना पर सुहागा। आशय यह कि विदुषी धनदेवी जी पर असली वैराग्य का मजीठी रङ्ग चढ़ गया और धनदेवी जी का विचार निश्चित हो गया कि इस नश्वर संसार का त्याग करना ही चाहिये, यह अनित्य है तत् पश्चात् सती द्रौपदां जी महाराज स्यालकोट से लौटकर पसरूर होती हुईं नारोवाल पधारीं। जगह २ धर्मप्रचार हुआ। एक आर्यसमाजी भाई को आपके तर्क के आगे नतमस्तक होना पड़ा। उसके हृदय में हमेशा के लिये जैनधर्म और

इसके नियम जम गए। धन्य थी आपकी बुद्धि-जो मिथ्या विचारों को बदल कर सत्यधर्म में तत्पर करा सकती थी।

आपका सम्वत् १९९६ में गुजरांवाला नगर में चातुर्मास्य हुआ। व्याख्यानों तथा उपदेशों से भाई बाईयों में धर्म का उत्साह बढा। तपस्या दानादि बहुत हुए। श्रोताओंने समदृष्टि का लाभ उठाया अर्थात् आपके उपदेशसे धर्म के तत्व को पहिचाना। बाइयों ने थोकड़े स्तवन आदि ज्ञान का लाभ उठाया। अधिक क्या लिखें आप जहाँ २ जाती थीं उपदेश करती थीं। उन भव्य जनों को यह मालूम होता था कि मानों हमारा पुण्य ही उदय हो आया है। आपने वहा 'स्त्री और गृहस्थ' तथा फैशन पर उपदेश दिए जो यहां लिखे जाते हैं—

मती जी की स्त्री और गृहस्थ पर
ध्यानपूर्वक आलोचना—

विद्वान बुद्धिशाली महात्माओं ने साधारणतया और हिन्दु शास्त्रों ने विशेषतया गृहस्थाश्रम को अति उच्चपद दिया है क्योंकि इस गृहस्थाश्रम का ठीक २ विधिपूर्वक पालन करने से स्त्री पुरुष दोनों उच्चस्थान प्राप्त कर सकते

हैं। चूंकि इस आश्रम में मेल-मिलाप, बाल-बच्चों का पालन, निर्वाहार्थ कार्य व्यवहार, परिश्रम आदि के साथ २ यथाशक्ति दान, पुण्य, सेवा, परोपकार, भजन, उपासना, जप, तप आदि भी यथावसर हो सकते हैं। इसलिए विद्वान् महात्माओं ने और शास्त्रों ने प्रतिपादन किया है कि झूठ, कपट, पाखण्ड तथा अन्य दूसरों को दुःख देने के विचार त्याग कर जो स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रम का यथार्थतया पालन करते हैं, वे इस भवसागर से तर कर उच्च पदवी को प्राप्त कर लेते हैं। झूठ कपट से रहित न्याय पूर्वक अपना निर्वाह करने के साथ २ परोपकार और बड़ों की सेवा करने वाला ही वास्तविक गृहस्थ कहलाता है।

स्त्री गृहस्थ का एक सुदृढ़ स्तम्भ है। जिस प्रकार स्तम्भ घर को संभाले रहता है, ठीक उसी प्रकार एक सच्ची साध्वी स्त्री गृहस्थाश्रम को दृढतापूर्वक संभाले रहती है। यह कोई छिपी हुई बात नहीं है, सब जानते हैं कि जिस घर में स्त्री पतिव्रता, लज्जावती, मधुरभाषिणी, सुशीला, पड़ोसियों और सम्बन्धियों से यथायोग्य बर्ताव करने वाली होती है, वह गृह सदा स्वर्ग का सा सुखी और समृद्ध बना रहता है।

सदाचारिणी और अच्छे स्वभाव वाली स्त्री अपने पति को अपने शुद्ध विचारों, अच्छे बर्ताव, और स्वभाव से अपनी इच्छानुसार पवित्र और अच्छे साँचे में ढाल सकती है। पति के हर प्रकार के दूषणों को नष्टकर उसको देवता स्वरूप बना सकती है किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि पहिले वह स्त्री स्वयं यथार्थ में गुण-सम्पन्ना हो। गृहस्थ की मर्यादा ही स्त्री के साथ है। स्त्री ही गृहस्थ को सुरधाम बना सकती है।

स्मरण रहे कि धन और सम्पत्ति ही गृहस्थ में हर-प्रकार के सुखों का मूल नहीं, प्रत्युत, सदाचारिणी स्त्री है। इसमें सन्देह नहीं कि गृहस्थ के निर्वाह के लिए धन का होना नितान्त आवश्यक है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि धन ही सर्व सुखों का कारण है। यदि ऐसा ही होता तो हम कभी धनाढ्य घरानों में नित्यप्रति का दुःख और क्लेश न देखते। लक्षपतियों को घरबार त्याग, सन्तान और सम्बन्धियों से मुँह मोड साधु होते और कई बार आत्मघात तक करते न देखते। नहीं, प्रत्युत गृहस्थी के पास धन जितना अधिक होगा, दुःख और वासना बढ़ेगी। परन्तु यदि घर में स्त्री पतिव्रता और

सुशीला होगी तो घर सुखधाम स्वर्ग हो जायेगा । एवं सिद्ध हुआ कि जिस घर में भली, पवित्र, विचारशीला, पतिव्रता सुशीला स्त्री हो उस घर में लक्ष्मी, समृद्धि, आनन्द, वैभव सुख शान्ति का निवास होता है ।

इस संसार समुद्र में गृहस्थाश्रम के लिए स्त्री एक सुदृढ़ नाव है । जो अपनी प्रबल निर्दोष गति से इस संसार सागर से अपने गृहस्थाश्रम को अत्यन्त यत्न से पार उतार सकती है । क्योंकि गृहस्थाश्रम के निर्माण में स्त्री का अधिक भाग है, पुरुष विचारा तो निर्वाहार्थ अपने साहस, बल और योग्यतानुसार चार पैसे उत्पन्न करने के लिए है । शेष सर्व गृहस्थ सम्बन्धी कार्य स्त्री के अधीन हैं । अतः जो स्त्री गुणसम्पन्ना होगी वही गृहस्थाश्रम का भली-भान्ति संचालन कर सकेगी । अन्य नहीं ।

स्त्री के लिए सबसे बड़ी बात पति-प्रेम है और इस प्रेम के भीतर सर्व बातें तथा गुण गर्भित हैं । अतः साध्वी स्त्री को अपने पति के साथ सदा प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिये । उसकी सेवा, आज्ञापालनादि में सदा सचेष्ट रहना चाहिये । शास्त्रों में पति की आज्ञा

पालन का महत्व प्रतिपादन यही सूचित करता है कि इस भवचक्र में स्त्री के लिए स्वपति से बढ़कर, प्रेम के योग्य अन्य कोई वस्तु नहीं है।

पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा करना शक्ति से बाहिर है। पतिव्रता स्त्री जो चाहे कर सकती है। यहा तक कि सूर्य तक को रोक सकती है। उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है।

द्वितीय स्त्री में घर गृहस्थ को निभाने तथा सञ्चालित करने की योग्यता होनी चाहिये। इसलिए प्रत्येक स्त्री को शिक्षिता होना आवश्यक है। शिक्षिता स्त्री गृहस्थ के कार्य, उसका प्रबन्ध, हिसाब-किताब बालकों आदि का पालन, उनकी रक्षा तथा शिक्षा सरलतया कर सकती है।

जिस स्त्री में उपर्युक्त गुण विद्यमान होंगे, उसका घर हर प्रकार से सुख, आनन्द और समृद्धिपूर्ण होगा। उसकी जीवन-यात्रा सुख शान्तिपूर्वक व्यतीत होगी और लोक परलोक उभय सुधर जाएंगे। संसार में यश, कीर्ति, प्रशंसा और मान सन्मान प्राप्त होगा और उभय लोक सुधरने से निर्वाण पद भी प्राप्त होना सरल होगा।

❋ फैशन के ऊपर सती जी की कड़ी समालोचना ❋

स्त्रियों में उत्तरोत्तर फैशन की उन्नति और उसके दुष्परिणाम को देखकर प्रत्येक देशप्रेमी तथा जाति हितैषी का हृदय दुःखी होता है। इस दुर्दशा को देख २ कर वह सोचता है कि इस फैशन और नित्य नये सूर्य इसकी उन्नति का क्या परिणाम होगा। जब से हिन्दु स्त्रियों में इस दुष्ट फैशन ने पांव रखा है, उनकी काया ही पलट गई। वह पहिली सी बात ही नहीं रही। सारा दिन दर्पण कङ्घी तथा विलास सामग्री वा शृङ्गार के अतिरिक्त उनको दुनिया का कोई काम ही नहीं रहा।

कहां तो पहिले स्त्रियों को घर के काम-काज, गृहस्थ के अन्य कार्य, बालकों के पालनादि से सारा दिन अवकाश नहीं मिलता था और कहां आज यह हाल है कि घर के काम-काज को हाथ लगाना एक प्रकार का पाप हो गया है। नित्य नये सूर्य उठते बैठते, खाते पीते, पति से नवीन वस्तुओं की याचना के अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं रहा। इस पर सिनेमा थियेटर और नाटक क्लबों की रुचि और उनके सम्बन्ध में खुली स्वतन्त्रता ने

और भी तूफान मचा रक्खा है। पुरुषों का खून पसीना एक कर कमाया रुपया व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। प्रत्येक स्त्री इन वातों में एक दूसरी से बढ चढ कर भाग लेना अपनी शोभा समझती है।

क्या यह अनर्थ और अन्धेर नहीं है कि इधर, जरा डोंडी पिटी कि 'आज सिनेमा में लेडी शो [स्त्री शो]' है और उधर यह सुनते ही स्त्रियों में खलबली मच गई। बन ठन कर वहां जाने का प्रबन्ध होने लगा। चाहे घर का काम बिगड रहा है, दूध उबल २ कर चूल्हे में जल रहा है, बालक बिलख २ कर बिलाप कर रहा है। पर कोई परवाह नहीं। उस समय विचार और परवाह है, तो केवल फैशन और शृङ्गार की। मैं स्पष्ट करके क्या लिखू लेखनी भी लज्जावश लिखने में असमर्थ है, कम्पायमान होरही है, पर जल दिल से यह निम्नलिखित पजाबी कविता लिखी ही तो गई—

पाया बहुत अन्धेर जनानियां ने,
कीतो मिट्टी पलीत फैशन हारियां ने।
अज शर्म हया नू साड चूल्हे,
धर्म कर्म छड्या एन्हा नारियां ने॥

रह्या फ़रक न कोई सुहाग अन्दर,
दफ़ा दूर कीता एन्हां क्वारियां ने।
शर्म वड्डी ते निक्की दी दूर होगई,
फड़ी बेशरमी एन्हां डारियां ने ॥

घुंड कड्ढन अपने जेठ ससुर,
घर वाले ते गली गवांड कोलों।
वांग वेश्या फिरन बाज़ार दे विच्च,
डर शेर न चीते ते सांढ कोलों ॥

बुड्ढी, नड्ढी, कारी दा भेद न कोई,
दिल धड़कदा पुछ्यां रांड कोलों।
हाय पंजवां वेद जनानियां दा,
पर पता नहीं सबक केहड़े कांड कोलों ॥

नी आ निहालो गोपाल दइए,
वेला सैर दा हुन ते हो गया जे।
रोटी होटलों बाबू जी ले आसन,
अते कृष्णागोपाल मेरा सोगया जे॥

मैं टीपू नूं नाल लै सैर चली,
ठंडी सड़क दा वेला हुन होगया जे।
जद चिर लग जाय घबड़ावना नही,
कर बिस्तरा बाबू जी सो रह्यो जे ॥
रती लहंगा मेरा कच्छे मार लेना,
छेती चलके थां पहिलां मलिए जी ।

इक दूसरे घरों आवाज आई,
चलो बाबू जी सैलें नू चलिए जी।
लाना मुन्नी नू उँगली जरा अपनी,
अते निक्के नू चुक के चलिए जी॥
फैशबेग मेरा मेरे हत्थ देदयो,
नाल सहेलिया रल के चलिए जी।

अज बाबू जी मैं बहुत थक गईआं,
मेरा बिस्तरा जरा विछा देना।
मेरा दिल ता खान नू नहीं करदा,
एह पर दूध दो सेर मगवा देना॥

इक पा जलेबिया धन के तें,
चमचा मार के जरा रला देना।
जरा बाबू जी सौन तों कुछ पहिले,
कमर मेरी नू थोड़ा दबा देना॥

ऐस फ़ैशन दा गरक होजाए बेड़ा,
छड्डी शरम हया न जनानिया विच।
धर्म कर्म धरता कुज़या शर्म आउ,
रहया धर्म न कर्म मस्तानिया विच॥

जेकर आन मन्दिर धर्मशाला अन्दर,
ओथे नाम लिखान भक्तानियां विच।
ओह! प्रेम मुहब्बत सब दूर होई,
अज नाथ जी एन्हा फ़ैशनमानिया विच॥

बड़े शोक से देखा जा रहा है कि इस दुष्ट फैशन के रोग ने हिन्दु स्त्रियों में अधिकार ही कर लिया है। किन्तु अतिशोक और दुःख तो यह है कि जैन स्त्रियां भी इस चक्र में बुरी तरह फंसी जा रही हैं, जिससे जैन स्त्रियों में से अपना नित्य-नियम, धर्म कर्म आदि सब दूर होते चले जा रहे हैं।

परन्तु स्मरण रहे, यों तो कोई शास्त्र भी स्त्रियों को इस प्रकार के फैशन की आज्ञा नहीं देता, किन्तु जैन धर्मानुसार यह फैशन एक पाप की सीमा तक पहुँच जाता है। क्योंकि इस फैशन में जो वस्तुएँ प्रयुक्त होती हैं उनमें से बहुत सी जानवरों की अस्थियों, नखों, सींगों, चमड़े और चरबी आदि के संयोग से अन्य देशों से बनकर यहां आती हैं। ये विलायती क्लिप, क्रीम और साबुन आदि इन्हीं अपवित्र वस्तुओं के योग से तो बनते हैं, फिर क्या जैन और क्या हिन्दु स्त्रियों को ऐसी त्याज्य वस्तुओं का प्रयोग करना उचित है? नहीं।

द्वितीय इस फैशन ने घर के काम काज में बाधा उपस्थित करने के अतिरिक्त स्त्रियों के स्वास्थ्य पर भी

बुरा प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है। वायु गुल्म, प्रदर, अजीर्ण, जीर्णज्वर आदि कुछ दुष्ट रोगों से आज कोई भाग्यवान् घर ही सुरक्षित होगा।

तृतीय इस फैशन से विलास और निर्लज्जता की उन्नति हो रही है। उपर्युक्त रोग इस विलास आदि के ही परिणाम हैं।

चतुर्थ अतिव्यय-आय से बढ़कर व्यय, जिससे साधारण स्थिति के लोग विवश होकर एक दूसरे शहर से दीवालिया होकर, भागने पर उतारु हो जाते हैं। यह कोई नई बात नहीं है। ऐसी कई घटनाएं दृष्टिगोचर होती हैं।

सो जिस फैशन द्वारा अपने धर्म कर्म और लज्जा का नाश हो, विना कारण अतिव्यय हो, घर के काम काज में बाधा हो, स्वास्थ्य का नाश इत्यादि अनर्थ हों, उस फैशन के भूत से हर स्त्री को बचना चाहिये। जैसे सर्प बिच्छु आदि विषैले जन्तुओं से।

इस फैशन उपासना ने भारतीय स्त्रियों पर कुप्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है। विदेशी लोग हमारी इस निर्बलता से भली भान्ति परिचित हो चुके हैं, अत एव वे

प्राय: कोई न कोई नई वस्तु बनाकर, हमारे देश की सम्पत्ति अपने देश में खींच रहे हैं। जहां इस फैशन ने हमारे धर्म पर आक्रमण किया है, वहां हमारे देश की सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा भी लूटी है। फिर इन बातों के होते हुए, जब स्त्रियों को इस फैशन की ओर प्रवृत्त देखा जाता है, तो उस समय हृदय को अत्यन्त क्लेश तथा दुःख प्राप्त होता है।

आज स्त्री का पतिप्रेम, प्रेमशून्य होकर केवल प्रदर्शन मात्र रह गया है और स्त्री को अपने पति पर शासन करने का भाव उत्पन्न हो गया है, जो कि महापाप है। अतः स्त्री को स्वयं ही इस अधम फैशन उपासना से बचना चाहिये। सादा जीवन, सादा रहन सहन, शुद्ध तथा सात्विक आहार और प्रेम में जो उभय लोक का आनन्द है, वह इस फैशन में तनिक भी नहीं। इसलिए स्त्रियों को स्वयं ही इस फैशन से परहेज करना चाहिये। पुरुषों को भी इस बढ़ती हुई व्याधि का उचित रीति से निरोध करना योग्य है। आशा है, वे स्त्री तथा पुरुष जिन्हें धर्म से प्रेम है, भविष्य में इस फैशन से परहेज कर यश तथा पुण्य के भागी बनेंगे।

यों आपके सदुपदेश वा सत्सङ्गति से हर तरह का लाभ होता था। क्योंकि आप अपने शान्तरूप स्वभाव से सब भाई बाइयों पर एक दृष्टि रखती थीं। ठीक है—

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम्।
अहो! सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा॥

अर्थ— सज्जन पुरुषों का मन सब पर एक सा रहता है। उनके लिए सभी समान हैं, जैसे अञ्जली में लिए फूल दाएँ बाएँ दोनों हाथों को बराबर सुगन्धित करते हैं।

सम्वत् १९६७ का चातुर्मास्य मलेर कोटला में हुआ आपके व्याख्यानों में जैन अजैन भाई बाइयों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। आपकी मधुर वाणी, सरल और निष्पक्षता को लिए होती थी। अत साधारण जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता था। आप फरमाती थीं—

—भव्य प्राणियो! मानसिक दृष्टि से तुम लोग समभाव का आश्रय ग्रहण करो। क्योंकि क्रोधरूपी वडवानल से दुर्धप सौन्दर्यरूपी पर्वत से दुर्गम्य, प्रपञ्चरूपी मगरों से युक्त, लोभरूपी आवर्तों से भयङ्कर, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक और दुःखरूपी जल से परिपूर्ण, इन्द्रियरूपी महाभय

से उत्पन्न हुई चिंतारूपी उर्मियों से व्याप्त, ऐसे इस अपार संसार समुद्र में प्राणियों को, मूल्यवान् महारत्न की भांति मनुष्यजन्म मिलना परमदुर्लभ है। १० बोलों की प्राप्ति, जिसमें आर्यदेश वा सद्वंश में जन्म, दीर्घायु, आरोग्यता, धर्मेच्छा और सद्गुरु का योग इन पांचों का मिलना अतिकठिन है इत्यादि।

चातुर्मास समाप्ति पर मालेरकोटला से विहार कर मार्ग में नगरों को पावन करती हुई आप हुश्यारपुर पधारीं। पुरुय योग से जैनाचार्या प्रवर्तिणी महासती श्री श्री पार्वती जी महाराज भी वहां पधारी थीं। चैत्र वदि ५ सम्वत् १९६७ को वहां श्री वैरागिन बाई धनदेवी जी (जिन्हें आपके सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ था) और जिन्होंने घर वालों से दीक्षा की प्रश्नोत्तर करके आज्ञा प्राप्त करली थी और उनकी सम्मति से अमृतसर श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यवर सोहनलाल जी महाराज के दर्शन कर के हुश्यारपुर पहुँची थीं) का दीक्षा महोत्सव समारोह पूर्वक हुआ। उस महोत्सव पर पञ्जाब के विभिन्न नगरों के अतिरिक्त मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात काठियावाड़ वा बम्बई के सेठ साहूकार, श्रावक भारी संख्या में

ए थे, खूब धूमधाम से दीक्षा हुई थी। कुच्छ समय पश्चात्
दीक्षिता शिष्या श्री धनदेवी जी वा अन्य आर्याओं
हेत आपने वहा से प्रस्थान किया और रास्ते के लोगों
सदुपदेश देती हुई रोपड पधारीं।

सम्वत १९९८ का चातुर्मास्य आपने रोपड के भाई
हिनों की विनति से वहीं किया। आप पाच सतियों के
र्शन और जप तप की महिमा का जनता ने लाभ उठाया
ाप सदुपदेश दिया करती थीं।

भाइयो! दुनिया में जीव के लिये सार वस्तु क्या
प्रभु श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है कि—

गाथा—सार दसण नाण सार तव नियम सजम सील॥
सार जिणवरधम्म सार सलेहणा पण्डित मरण॥

अर्थ—१ जीवन का सार दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व है
[सच्चे देव गुरु धर्म पर श्रद्धा रखना] श्री वीतराग देव,
विरागी कनककामिनी के त्यागी और गुणधारक गुरु
तथा अहिंसा, तप, सयमरूप सद्धर्म इन तीनों को समझना
और इन पर विश्वास तथा श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है।
जो जीवन का प्रथम सार है।

२– [सारं नाणं] जीवन का सार सम्यक् ज्ञान है अर्थात् सत्य ज्ञान के स्वरूप को समझना तथा उसके बारे में पक्षपात रहित विचार विमर्श करना और जड़ चैतन्य के स्वरूप का ठीक २ ज्ञान करना।

३– जीवन का तीसरा सार है तप अर्थात् १२ प्रकार की तपस्या में आत्मा को लगाकर कर्मबन्धन को काटना तथा आते हुए पापरूपी पानी को रोकना।

४– संयमपूर्वक जीवों की रक्षा करना, जीवन का चौथा सार है।

५– शीलवान् अर्थात ब्रह्मचारी रहना, व्रत, नियम का पालन करना और सदा संतोषी रहना, यह जीवन का पांचवाँ सार है।

६– जिनेश्वर वीतराग प्रभु के वचनों पर श्रद्धा रख कर उनके बताये हुए धर्ममार्ग पर विश्वास के साथ चलना तथा कथित आचरण जीवन का छठा सार है।

७– अतिन्म समय में [मृत्यु के समय] आलोचना और आत्म निन्दा कर स्व आत्मा को त्यागवृत्ति में लगाना और नवकार मन्त्र की शरण लेकर वीतराग प्रभु

के चरणों का ध्यान लगाना जीवन का सातवां सार है।

८– स्वसम्बन्धी परिजनों, इष्टमित्रों और अपने शरीर तक से मोह को त्याग कर शरीर को त्याग कर समाधि मरण जीवन का आठवा सार है।

ये अष्ट पदार्थ ही जीवन के सार हैं। इनको हृदयङ्गत करके इन पर आचरण करने वाले प्राणी इस ससार से पार हो जाते हैं। यद्यपि इस गाथा का अर्थ बहुत ही विस्तृत है किन्तु यहा संक्षेप में केवल निर्देश मात्र किया गया है। भगवान ने यह भी फरमाया है कि हे! भव्य प्राणियो!! जीवों के लिए इस ससार में पांचों ही प्रमाद असार पदार्थ हैं। कहा है–

गाथा– मज्ज विसय कषाय निद्दा विगहा य पञ्चमी
भणिया। ए ए पञ्चपमाया जीव पाडेन्ति ससारे ॥

जातिमद [अभिमान], कुलमद, बलमद, रूपमद, तपमद, लाभमद, सूत्रमद और ऐश्वर्यमद रूप ये आठों मद, पांच इन्द्रियों के शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श रूप ये पाच विषय; ३ क्रोध, मान, माया और लोभरूप ये चार कषाय; ४ निद्रा; ५ स्त्रीकथा, भातकथा, देशकथा

और राजकथा रूप चार विकथाएँ, ये पांच प्रमाद हैं जो जीव को संसार समुद्र में गिराते हैं (परिभ्रमण कराते हैं)

जैसे आलस्य में पड़ा हुआ मनुष्य कार्य्य से हीन रहता है, इसी तरह इन पांच प्रमादों में लगा हुआ जीव, अपनी शक्ति ढांप लेता है। इसलिये यह पाँच प्रमाद जीव को असार हैं। इत्यादि २ उपदेशों से भव्य प्राणियों को धर्मतत्व सुनाते हुए चातुर्मास्य सम्पूर्ण किया।

इस चातुर्मास्य में आपने श्री प्रवर्तिणी महासती श्री पार्वती जी महाराज का सम्वत् १९६६ तक जीवनचरित्र लेखबद्ध किया। जिसे रावलपिण्डी जैनसमाज ने उर्दू लिपि में छपवाया और जिसके आधार पर ला० पन्नालाल जी जालन्धर निवासी ने उर्दू लिपि में श्री महासती पार्वती जी का वृहज्जीवन-चरित्र लिखा था जिसका हिन्दी अनुवाद भी छप चुका है।

सम्वत् १९६९ का चातुर्मास्य रोहतक में हुआ। आप रोपड़ में चातुर्मास्य सम्पूर्ण करके विचरती हुईं, अम्बाला, सङ्गरूर आदि क्षेत्रों में होती हुईं, देहली शहर पधारीं। जनता ने आपसे विनती की कि 'आप चातुर्मास्य की कृपा करें।' परन्तु आपने रोहतक की ओर विहार कर

दिया। चातुर्मास्य भी वहीं करना निश्चित हुआ। आपके व्याख्यान लोगों के दिल मोह लेते थे। आपके कई पब्लिक व्याख्यान हुए। अन्य धर्मी भाई भी व्याख्यान श्रवणार्थ आते थे। जब आप देहली से चली थीं, तो उस समय रोहतक के मार्ग में आपकी छोटी गुरुबहन, आर्या लक्ष्मी देवी जी को बुखार ने आघेरा था। ज्वर कम न हुआ और अन्त में भाद्रपद सुदि में पर्यूषण पर्व में ३ दिन का सथारा कर आत्म समाधि से आप स्वर्ग सिधार गईं।

वेह थीं तो आपकी गुरुबहन परन्तु चेली की तरह आपकी भक्ता थीं। आपकी शान्ति से मुग्ध वेह गुरुबहन आचार्या से बढ़कर आपकी आज्ञा का पालन करती थीं। इस पंचम काल में सराग संयम है क्योंकि वीतरागता का इस समय अभाव है। आपके धर्मप्रेम और वैराग्योपदेश ने आपकी वाणी को इतनी शक्ति दी थी कि आप शत्रु को भी वश में कर लेती थीं। फिर वे तो आपकी गुरुबहन थीं। इसी वाणी के प्रभाव से प्रत्येक मनुष्य आपसे प्रेम करता था।

गिरौ मयूरो गगने पयोदो,
लक्षान्तरे अर्कञ्च जलेषु पद्मम् ।
इन्दुश्च लोके कुमुदस्य वन्धु-,
यों यस्य मित्रं नहि तस्य दूरम् ॥

मेरा मतलब इस श्लोक से यह है कि जैसे इन चीजों का प्रेम है। पारस पत्थर की भान्ति लोग उनकी ओर खिन्च जाते थे। वे वैराग्य से अशुभ कर्म को दूर करते थे।

आर्या लक्ष्मी जी एक उच्च घराने की सुपुत्री थीं। छोटी अवस्था में पति का वियोग होने पर आपको श्री १००८ श्री भगवान् देवी जी महाराज के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ। संयम व्रत दीक्षा लेकर विनयपूर्वक ज्ञाना-भ्यास करती थीं। शीघ्र ही विदुषी वन गई थीं। आपका स्वर अत्यन्त मधुर था। आप धर्ममार्ग की एक सफल प्रदर्शिका थीं। परन्तु काल ने असमय में ही आप को दैवगति पहुँचा दिया। लक्ष्मी जी के वियोग होने पर श्री द्रौपदां जी महाराज को वहुत शोक हुआ। वे सोचने लगीं। इस काल को वड़े २ वीर पुरुष भी अपनी वलि दे चुके हैं। धर्मात्मा पुरुष इसको अपना मित्र समझते हैं क्योंकि यदि यह न हो तो मनुष्यगति, देवगति और मोक्ष-

गति में कौन पहुँचाता। अत. साधुजन काल से नहीं डरते।
रोहतक का चौमासा पूर्ण कर आप देहली शहर पधारीं।
लाला मांगीलाल के मकान में व्याख्यान हुआ। पश्चात्
चिराग देहली और उनके आस पास के क्षेत्रों में धर्म
प्रचार करती हुई सदर पहुँचीं। वहा आपसे चातुर्मास्य
करने की विनती की गई।

सम्वत् १९७० चातुर्मास्य आपने देहली सदर बाजार
में किया। ला० जौहरीमल, सावनमल मुशद्दीलाल और
फकीरचन्द आदि भाई व्याख्यान सुनकर कहते थे कि ये
सती जी चौथे आरे की निशानी है। हमारे धन्यभाग्य
हैं, जो ऐसी महासतियों का उपदेश और दर्शन प्राप्त
हुआ। आपके चातुर्मास्य से अनेक बाइयों को लाभ प्राप्त
हुआ। दिगम्बर बाइयों को आपसे सामायिक आदि
अभ्यास करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपने जीवदया
के लिए दानादि का उपदेश दिया। उन बाइयों को
स्थानक से बहुत प्रेम होगया। उन्होंने श्रावक के १२ व्रत
धारण किये और ज्ञानाभ्यास भी किया। इस चौमासे के
बाद देहली से बडौत होती हुई कांधले पधारीं। उस
समय शहर देहली में वैरागिन मोहनदेवी की दीक्षा होने को

तैय्यार थीं। आज्ञा प्राप्ति में देरी होरही थी। आज्ञा होते ही देहली से लाला घमराडीलाल जैन को कांधले तार दी गई कि सरदार सिंह जी वैरिस्टर की वहिन मोहनदेई जी की दीक्षा पौष वदी पञ्चमी को है। आप श्री १००८ श्री सती पूर्णदेवी जी महाराज, श्री १००८ श्री द्रौपदां जीं महाराज के चरणों में देहली पधारने की विनती करें। लाला सुलतानसिंह जी रईस ने सती जी को सूचित किया। कांधले वाले भाइयों ने कहा कि वैरागिन को हम यहां ले आते हैं और यहां ही दीक्षा हो परन्तु देहली वाले भाइयों ने न मानी। अत एव सती जी ने देहली के लिये विहार किया और देहली में लाला मांगीलाल जी के मकान में पधारीं। पौष वदी पंचमी ग्यारह वजे दीक्षा संस्कार बड़े समारोह से हुआ। और आपनें अष्टमी को वहां से प्रस्थान किया। सदर के स्थानकवासी और मन्दिरवाले भाई अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शाहदरे तक छोड़ने गए। भाई वाइयों ने बड़ी रौनक की। दूसरे दिन देहली विरादरी आपके दर्शनों के लिए आई। कांधले तक देहली वालों ने बड़ी रौनक लगा रक्खी। आप करनाल होती हुई अम्बाला पधारीं। अम्बाला में आपने धर्मोपदेश दिया।

आपके अनेकों सांसारिक रिश्तेदार भी आए। भाई और बाइयों की इतनी रौनक थी कि आपको किसी वक्त भी खाली समय न मिलता था। यहा से विहार कर आप लुधियाना फगवाडा, जालन्धर और कपूरथला होती हुई अमृतसर पधारी। यहा पर पूज्य श्रीमज्जैनाचार्य श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज के दर्शनों का लाभ उठाया।

सम्वत् १९७१ का चातुर्मास्य अमृतसर में पूज्य श्री महाराज के चरणों में हुआ। इस चौमासे में धर्म का उद्यम बहुत हुआ और आपने अपनी शिष्याओं को ज्ञानाभ्यास कराया। शास्त्र, पढाए और जैन तत्वों का ज्ञान बताया। बडी रौनक से चातुर्मास्य लाला नत्थूशाह के मकान में समाप्त किया। उस जगह से विहार कर गरवाली पधारीं। वहा जैनाजैन भाइयों में धर्म का प्रचार हुआ। शुष्क जगह वर्षा होने पर पानी की कदर होती है, इसी तरह जहा मुनि ज्ञानी कभी २ जाते हैं, वहा धर्म के जिज्ञासुओं को चाह होती है। गरवाली में भाई बाइयों ने आपकी तन मन से सेवा की।

महात्मा जन जहा चरण धरें, गुणीजन धरते शीस।
चरणरज मस्तक धरें, करे मुक्ति वसशीश॥

तब स्यालकोट से महासती श्री श्री १००८ श्री पार्वती जी महाराज, श्री १००८ राजमती जी महाराज, श्री १००८ श्री चन्दा जी महाराज आदि सतिएँ अमृतसर पधारीं। आप भी उनके दर्शनार्थ पुनः अमृतसर पधारीं। वहां से कपूरथला होती हुईं जेजों पहुँचीं। जेजों में अजैन भाइयों में बड़े जोर शोर से उपदेश हुआ। भव्य जीवों को लाभ हुआ वहां से आपने होश्यारपुर को पावन किया। फिर जालंधर फगवाड़ा आदि में विचरती हुईं अम्बाला पधारीं। भाइयों की विनती से चातुर्मास्य इसी जगह हुआ। १९७२ का चातुर्मास्य समाप्त कर आप पटियाला पधारीं। एक बड़ी सुशीला और भक्त बाई को जिसका नाम पद्मावती था तथा जिसे पति का वियोग हो चुका था, आपके उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह दीक्षा लेने को तैयार हो गई। आप वहां से लौटीं तो वह बाई जी भी आपके साथ ही साथ होश्यारपुर आईं। उस समय उस जगह श्री १००८ श्री प्रवर्तिणी पार्वती जी महाराज विराजमान थीं। आप भी उनकी सेवा में रहीं। भाइयों ने दीक्षा की विनती की। पद्मावती जी को बड़ी शान से सती जी के

चरणों में लाया गया। श्री महासती जी ने दीक्षा का पाठ पढाया। पद्मावती जी को दीक्षा देकर श्री धनदेवी जी की शिष्या बनाया। महासती जी की आज्ञा पालन कर आप जालन्धर शहर पधारीं। कुछ दिनों के बाद कर्मयोग से आर्या पद्मावती जी को बुखार हो गया। बुखार ने भी ऐसा जोर पकडा कि तकलीफ अत्यन्त बढ गई। परन्तु वह सती ऐसी महाभाग्यवती थी कि किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करती थी। पूर्ववत अपने संयम और गुरुभक्ति में लीन रही। गर्मी की ऋतु उसपर कठिन जैन साधुव्रत। आप सच्ची क्षत्रिया बाला थीं। धन्य है आपके नाम पर जो इस फकीरी के नियमों को बडे प्रेम और श्रद्धा से पालन करती रहीं। लगभग चार मास रुग्णावस्था में इस अनित्य देह के ममत्व को त्यागकर प्रभुनाम स्मरण में लगी रही। अन्त में आप इस लोक को छोडकर स्वर्गधाम में जा बसीं। धन्य है ऐसी सच्ची वैरागिन को-और तरणहारी तारण वाले को।

श्लोक— परोपकाराय फलन्ति वृक्षा
परोपकाराय वहन्ति नद्य ।

परोपकाराय दुहन्ति गावः,
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥

सो आपने इस जन्म को सफल किया। श्री द्रौपदां जी महाराज की यह शिष्या अतीव चतुरा थी। उसकी इतनी छोटी अवस्था में मृत्यु होने का शोक तो आपको जरूर हुआ, परन्तु यदि आत्मा को उच्च गति प्राप्त हो तो यही मृत्यु आदर्श हो जाती है।

सम्वत् १९७३ का चातुर्मास्य जालन्धर शहर में हुआ और धर्मध्यान की अत्यधिक रौनक रही। चातुर्मास्य सम्पूर्ण कर आप कपूरथला, सुलतानपुर, फिरोजपुर होती हुई फरीदकोट पधारीं।

अमीरखां शिकारी का सच्चे हृदय से पश्चात्ताप
। और उपदेश का प्रभाव ।

श्री द्रौपदां जी अपनी शिष्याओं सहित सुलतानपुर की ओर से जीरा की ओर जारही थीं कि मार्ग में एक स्थान पर पिपीलिकाओं का दल जैसा कि उसका स्वभाव है, रास्ता काट कर एक ओर से दूसरी ओर जारहा था। आप उनके मार्ग को देखकर उसी स्थान पर ठहर गईं और

यत्नपूर्वक रजोहरण से मार्ग साफ करके ऐसी रीति से पांव रखती हुई कि कोई च्यूंटी पावतले न आजाय, उस मार्ग से गुजर गई। इसी प्रकार अन्य शिष्याओं ने भी किया।

क्योंकि ऐसा दृश्य वास्तव में अद्भुत और रोचक होता है, तथा जीव दया और सहानुभूति की वास्तविक मूर्ति आंखों के सम्मुख उपस्थित करता है, अतः दर्शक प्रभावित और चकित हुए बिना नहीं रह सकता। ठीक उस समय जबकि श्री सती जी और उनकी अन्य शिष्याएँ अपने ओघों (ऊन का गुच्छा जो जैन साधुओं के पास रहता है) से मार्ग साफ कर रही थीं, सामने से एक मुसलमान शिकारी जिसका नाम अमीरखा था आ रहा था। उसने जब ध्यानपूर्वक इस दृश्य को देखा तो तत्क्षण उसके दिल में भांति २ के विचार उत्पन्न हुए। वह सोचने लगा कि इन लोगों ने ऐसा क्यों किया? अन्त में वह न रह सका और नम्रता पूर्वक पूछने लगा कि आपने ऐसा क्यों किया है।

सती जी महाराज ने उचित शब्दों में अपने नियम समझाकर उसे दया और सहानुभूति का उपदेश दिया।

तथा इस कर्म के लाभ से अच्छी तरह परिचित कराकर युक्तिपूर्वक, धार्मिक दृष्टि से, जीव दया और सहानुभूति का कुछ ऐसा उपदेश दिया कि जिसे श्रवण कर वह विस्मित और अपने अन्दर अस्त होने लगा। लम्बी आह भर कर, अपनी छाती पर हाथ रक्खे हुए वह अतिनम्रता से यों कहने लगा—

अमीरखां— आह ! महाराज ! तो मेरा क्या हाल होगा ? जो कि मैं प्रतिदिन सैंकड़ों हजारों बटेरे पकड़ कर बेचता हूँ । मेरा तो काम ही हर समय जीवों को पकड़ना और बध करना है।

श्री सती जी—भाई ! तुम कौन हो और क्या व्यवसाय करते हो ?

अमीर खां— महाराज ! मैं शिकारी हूँ, जीवों का शिकार करता हूँ। उन्हें नगर में जाकर बेचता हूँ तथा बड़े २ अफसरों के यहां भेजता हूँ।

श्री सती जी— तो भाई ! तब तो तेरा जन्म व्यर्थ गया और इस कर्म से भविष्य के लिए तूने वह बुरा बीज बोया, जो जन्म जन्मान्तर तक तुझको

दुःख और क्लेश में घेरे रक्खेगा। तेरा कभी भला न होसकेगा। तेरी आत्मा नरक में निवास करेगी। तीर्थंकर भगवान ने सात नरक प्रतिपादन किए हैं। उन स्थानों पर महान् अतिमहान् दुःख होता है। हे भ्राता! हमारे जैन पैगम्बर ऐसा बता गए हैं कि 'जीव हिंसा बुरी है'।

मूल गाथा– जे केई बाला इह जीवियट्ठी,
पावाइ कम्माइ करन्ति रुद्दा।
ते घोर रूवे तमि सघयारे,
तिव्वाभितावे नरए पडंति ॥

भावार्थ– हे भ्राता! इस संसार में कितने ही ऐसे जीव हैं, जो अपने पापमय जीवन के लिये महान् हिंसादि पापकर्म करते हैं। इसलिये वे महाभयानक और अत्यन्त अन्धकार युक्त तीव्र दुःखाग्निमय नरक में जा गिरते हैं और वर्षों तक अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते रहते हैं।

गाथा– तिव्वं तसे पाणिणो थावरे या,
जे हिंसति आय सुहं पडुच्च।
जे लूसए होइ अदत्तहारी,
ण सिक्खति सेयं वियस्स किंचि ॥

भावार्थ— जो मनुष्य त्रस और स्थावर जीवों की निर्दयतापूर्वक हिंसा करता है और शारीरिक, पौद्गलिक सुखों के लिए जीवों का उपमर्दन करता है । दूसरों की चीजों का हरण कर अपने जीवन की सफलता समझता है। किसी भी व्रत को अङ्गीकार नहीं करता वह यहां से मरकर नरक में जाता है और स्वकृत्यों के अनुसार वहां नाना भांति के दुःख भोगता है।

अमीर खां— तो महाराज ! मैं भविष्य के लिये क्या करूँ ?

सती जी— बस, भविष्य के लिये तू इस घृणित कर्म को सच्चे हृदय से त्याग दे ।

अमीर खाँ— महाराज ! तो फिर मेरा कुटुम्ब क्या खाएगा कहां से खाएगा ? मेरा तो निर्वाह ही इसी काम पर है।

श्रीसती जी— हे भ्राता ! जब तुम जीवों पर करुणा लाकर कर उन पर मैत्रीभाव करोगे तो तुम्हारा धर्मभाव तुमको स्वयं खाद्य देगा। जो जीव दुनिया में पैदा हुआ है, वह अपना खाना, पीना, सुखादि साथ लेकर आया है। इस दुनिया में अनेकों प्रकार के व्यापार हैं। जो जीव धर्मात्मा होते हैं

वे अपनी आयु में वे काम करते हैं, जिनसे आगे
को जीव दु:ख न पाए। सब दिन एक समान
नहीं होते।

सुखस्यानन्तरं दु:खं दु:खस्यानन्तरं सुखम्।
दु:खानि च सुखानि च चक्रवत् परिवर्तन्ते॥

आशय—सुख के पीछे दु:ख और दु:ख के पीछे सुख अवश्यम्भावी है। मनुष्यों के दु:ख सुख चक्र समान है। अर्थात् जिस तरह मोटरगाड़ि का पहिया घूमता है, कभी ऊपर का हिस्सा नीचे और कभी नीचे का ऊपर इसी प्रकार कभी दु:ख और कभी सुख आते जाते ही रहते हैं। अतः पापकर्म त्याग करने चाहिएँ ताकि दु:ख न उठाना पड़े और पुण्यकर्मों से सुख उपार्जन करना चाहिये।

इस उपदेश का उसके हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने सच्चे हृदय से पापकर्म का प्रायश्चित्त किया। उसी दिन से सब शस्त्रादि फैंककर कोई शुभ व्यवसाय आरम्भ कर दिया। जिससे उसकी अवस्था ऐसी बदली कि चन्द एक दिनों में ही वह अच्छा धनाढ्य होगया। तब उसके हृदय में जैन साधु का महत्व पूर्णरूप से अङ्कित हो गया। [illegible] महात्मा मुनी जी महाराज की सेवा में

उपस्थित होकर ज्ञान का उपदेश सुनता और लाभ उठाता रहा।

श्लोकः- साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

अर्थ– सत्पुरुषों का दर्शन ही पुण्य है. इसलिये साधु तीर्थरूप हैं। तीर्थ समय पर फल देता है परन्तु साधुओं का दर्शन और संग तत्काल ही फल देने वाला होता है।

श्लोकः- चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगतिः॥

अर्थ- संसार में चन्दन शीतल होता है, चन्द्रमा चन्दन से भी शीतल होता है, परन्तु साधुओं की संगति इन दोनों से भी शीतल होती है।

यह एक उदाहरण है कि किस प्रकार सच्ची तपस्विनी साध्वी का उपदेश एक शिकारी पर प्रभाव डाल सकता है

सम्वत् १९७४ का चातुर्मास्य फरीदकोट में हुआ। भगवान् महावीर प्रभु की जयन्ती पर भाइयों की विनती करने पर आपका व्याख्यान हुआ। प्रतिदिन के व्याख्यान से जनता अत्यन्त प्रसन्न होती थी। बड़े २ राजपुरुष

आपका व्याख्यान सुनने आते थे। सती जी की विद्वत्ता धन्य थी। चातुर्मास्य बड़ी रौनक से समाप्त हुआ। तपस्या भी बहुत हुई। वहा से विहार करके फिरोजपुर होती हुई होश्यारपुर पधारीं और श्री प्रवर्तिनी महासती जी के दर्शन किये और कुछ दिन सेवा में रहीं।

आप वहां से जालन्धर, फगवाडा, मालेरकोटला, धुरी, भटिंडा आदि क्षेत्रों को पावन करती हुई हांसी जिला हिसार में पहुँचीं। वहां लाला मेतावसिंह, सरदारसिंह, शेखरचन्द, जयगोपाल आदि रईस भाइयों ने विनती की कि महाराज हमारे क्षेत्र को पावन करिये। आप जैसी विदुषी महासतियों के आने से इस क्षेत्र के भाग्य उदय हो गये हैं। आशय यह कि आग्रहभरी विनति की। आपने कहा कि आपके क्षेत्र में मुनिराज श्री श्री १००८ श्री रामनाथ जी, हीरालाल जी आदि महाभाग्यवान् साधु विराजमान हैं अतः आपका क्षेत्र तो पहले ही पवित्र है। परन्तु भाइयों ने कहा कि महासती जी! यद्यपि हमारे क्षेत्र में किसी प्रकार की कमी नहीं पर आप कृपा कर इस छोटे क्षेत्र को पावन करें। हम पवर्तिनी श्री महासती जी से

आज्ञा प्राप्त कर लेंगे । फिर वहां से आपने फाल्गुन चातुर्मासीय प्रतिक्रमण कर प्रस्थान किया ।

आप खादर देश को पावन करती हुई छोटे २ ग्रामों में पहुँचीं, जहां आर्या जी कभी २ ही पहुँचती हैं । वहां पर धर्मोपदेश भी खूब हुआ । आपके व्याख्यान से जैन अजैन सभी लाभ उठाते थे । महासती श्री पार्वती जी महाराज से हांसी के भाइयों ने विनती कर चातुर्मास्य की आज्ञा मंगवा ली । अतः आप हांसी लौटीं । आपके व्याख्यान की अभिलाषा भाइयों को बहुत थी । परन्तु मुनिराजों का व्याख्यान होता था । इसलिये आप दोप-हर को व्याख्यान देती थीं । एक दिन लखनऊ निवासी रायसाहिब फूलचन्द जी जैन ने जो कि नहर के आफिसर थे, सती द्रौपदी जी का व्याख्यान सुनकर कहा कि इनका व्याख्यान आम में होना चाहिये, जिससे जैनाजैन सभी लाभान्वित हों और विनति की कि महाराज ! आप पब्लिक व्याख्यान फरमावें । सती जी को क्या आपत्ति थी । भाई फूलचन्द जी ने हिसार की कमेटी से सफाई का प्रबन्ध कराया और व्याख्यान का प्रबन्ध भी किया । कचहरी के

आफिसर, डाक्टर, वकील, थानेदार, तहसीलदार और दिगम्बरी भाई भी पधारे । उच्च आफिसर डिप्टी कमिश्नर जो कि मुसलमान थे, वे भी उपदेश सुनने आये। बहुत से भाइयों का ख्याल था कि, वे सब भाई कुर्सियों पर बैठेंगे, परन्तु वे सब अन्य भाइयों की भान्ति नमस्कार आदि करके भूमि पर बैठ गये । आपने श्रोताओं को सम्बोधित कर परमात्मा के गुण बतलाये । सबने आपका उपदेश बड़े प्रेम से सुना । डिप्टी कमिश्नर साहिब ने प्रसन्न होकर कहा कि आपने बहुत अच्छा कहा और आपके उपदेश अमल में लाने लायक हैं । आप जो कहें हम देने को तैयार हैं । सती जी ने मधुर वाणी से फरमाया कि भ्राता जी ! हम तो जैन साध्वी हैं । धन पदार्थ त्याग, भगवान की उपासनामें समय व्यतीत करती हैं। सब जीवोंपर अभयदान की इच्छा रहती है । इस पर डिप्टी कमिश्नर साहिब ने कहा, जो आपकी आज्ञा होगी हम पालन करेंगे। महाराजने फरमाया कि भाई साहिब ! हांसी शहर में इस जलस्थान से हजारों मछलियां पकड़ी जाती हैं, आप इन जीवों को अभयदान दें । डिप्टी कमिश्नर साहिबने कहा कि आप कहें तो पानी सुखवा दूँ अथवा पानी आना बन्द करवा दूँ ।

सती जी ने कहा कि नहीं, आप मछली पकड़ना बंद करादें। यही हमारा चढ़ावा है। डिप्टी कमिश्नर ने तुरन्त ही ला० फूलचन्दजी को आज्ञा दी कि इन साध्वी जी की इच्छानुसार इस पानी से मच्छलियां पकड़ना वन्द करवा दें। जैनी और हिन्दु भाई इस वात को सुनकर फूले न समाए। सभा विसर्जित हुइ। धन्य २ की गूंज उठने लगी, दया का नाद वजने लगा। हांसी और हिसार के भाइयों तथा राय साहेव लाला फूलचन्द जी ने कोशिश कर इस महान् दया के लाभ को उठाया। सती जी का उपकार असंख्य जीवों पर हुआ। क्यों न हो, उत्तम आत्माओं के उपदेश का प्रभाव खाली नहीं जाता। जलचर जीवों को शांति प्राप्त हुई।

कल्पकाल सम्पूर्ण होने के वाद आप खादर होती हुई मयानदाव, कांधला तथा वड़ौत की ओर अपनी वाणी की अमृतवर्षा करती हुई, देहली पधारीं। इस समय तपस्विनी श्री पूर्णदेवी जी जो आपकी बड़ी गुरु वहन थीं, जिन्होंने १२ मास एकान्तर तप किया था, आपसे मिलीं। उनका आपसे वड़ा प्रेम था और आप

भी बड़ी श्रद्धा से, विनयपूर्ण वर्ताव से, उनकी भक्ति में तत्पर रहती थीं। आपकी शिष्या श्री सोमादेवी जी, श्री मोहनदेवी जी दोनों साध्वियां देहली वालों की विनति पर देहली विराजमान हुईं और चातुर्मास्य देहली 'धीरज' पहाड़ी पर फर्माया।

सम्वत् १९७४ का चातुर्मास्य हांसी में हुआ। आपके आगमन से भाई बाइयें अत्यन्त प्रसन्न हुईं। अत्यन्त विनति करने पर चातुर्मास्य वहीं स्वीकार फर्माया। वहां के लोग जैनधर्म के गूढ़ रहस्यों को समझते हैं और बड़े ज्ञानी हैं। लोग बड़ी २ उच्च पदवियों के मालिक हैं, धनाढ्य भी खूब हैं। आपके पधारने पर आपका व्याख्यान बड़ी धूमधाम से हुआ। इस चातुर्मास्य में खुली तपस्या खूब हुई। चार पचरंगी तथा धर्म का प्रचार होता रहा। आप का व्याख्यान आम पब्लिक में होता था। चातुर्मास्य पूर्ण करके आप रोहतक होती हुईं बड़ौत, छपरौली, खेकड़ा की ओर से सदर देहली पधारीं। आपका व्याख्यान बड़े जोर शोर से हुआ। आपके उपदेश से जौहरी हीरालाल जी की बहू रमादेई जी वैरागिन बनीं। लाला इन्द्रचन्द्

जी जौहरी के भाई जीतमल जी की वहू भी वैरागिन हुई । सदर वाले भाइयों की विनति पर वहीं चातुर्मास्य करना स्वीकृत हुआ ।

सम्वत् १९७६ का चातुर्मास्य सदर वाज़ार देहली में हुआ । इस चातुर्मास्य में वड़ी शान से व्याख्यान होते रहे । धर्मध्यान का ठाट लगा रहा । शहर वाले भाई वाइयों का आना जाना खूव रहा । चातुर्मास्य सम्पूर्ण कर आप जमुना पार पधारीं और कर्नाल, पानीपत, कांधला आदि क्षेत्रों में उपकार किया । कांधले में आपके व्याख्यान में वहुत भाई वाई आते थे । वहां जैन समाज को लाला गोकुलचंदजी की देहलीसे चिट्ठी आई कि सतीजी की सेवा में देहली की ओर पधारने की विनति करें क्योंकि हंसादेई जी की दीक्षा का मुहूर्त वैशाख सुदी सप्तमी निश्चित हुआ । अतः आप देहली पधार कर हम को दर्शनों द्वारा कृतार्थ करें । आपके दर्शनाभिलाषी वहुत से भाई आए । कर्नाल वाले भाई लक्ष्मीचन्द जी तथा अन्य भी वहुत से भाई आए । उन्होंने विनति की कि महाराज अपनी मधुर वाणी यहां भी सुनाने की कृपा करें । तो अजैन भाइयों को जैन

धर्म का तत्व मालूम हो। उनकी बहुत बिनति करने पर, आपने यह विचार किया कि अभी दीक्षा में बहुत देर है, कर्नाल की ओर प्रस्थान किया। ग्रामों में होती हुई कर्नाल पहुँचीं। आपके आठ व्याख्यान हुए। यहां से चल गुहाना होती हुई रोहतक पधारीं। यहा पर मुनिराज और महासती श्री श्री १००८ श्री राजमती जी, श्री पन्नादेवी जी भी विराजमान थीं। आपने उनके दर्शनों का लाभ उठाया। पश्चात् रोहतक मण्डी में आप पधारीं और बहुत उपकार हुआ। वहा से आप देहली सदर पधारीं। धर्म का उपदेश खूब हुआ। शहर के भाई आपके पास आए और विनति की कि महाराज आप शहर पधारें और वैरागिन की भावना सफल करें तथा उसे संसार से पार करें। धन्य है! ऐसे श्रावकों को जो अपना आदमी देकर और धन खर्चकर अपने जन्म को सफल करते हैं। आपने उनकी विनति को स्वीकार किया। भाइयों ने आपका स्वागत किया। पुनः व्याख्यान आदि होने लगे। वैरागिन की वैराग्य स्तुति घर २ गाई जाने लगी। उसकी माता जी ने भी बहुत द्रव्य खर्च किया। वे लाला सोमादमल

की सुपुत्री थीं। लाला जी अहमदाबाद के राजदरबार में बड़े माननीय थे। इनका भतीजा पूर्णचन्द अपने परिवार सहित दीक्षा में उपस्थित हुआ। आपके श्वशुरालय के लोग भी आए और लाला गोकुलचन्द जी आदि ने उत्सव समारोह के साथ चान्दनी चौक की बारहदरी में मनाया। इस समारोह का सर्व व्यय उन्होंने स्वयं ही किया। बारहदरी में भीड़ बहुत थी। सती द्रौपदां जी तथा और भी अनेक सतियां विराजमान थीं। हंसादेवी जी अपनी पुत्री तथा दामाद छगनलाल आदि सबका ममत्व छोड़कर धर्म आचार्या जी के चरणों में झुकीं और महाव्रत अङ्गीकार किया। ज्ञान ध्यान में चित्त लगा दिया। इस नवीन शिष्या ने भी श्री द्रौपदां जी को अपनी आचार्या बनाया। वे इसको दीक्षा देकर बड़ी रौनक से चल दीं। सदर बाजार पधारीं और कुछ दिन यहीं रहीं।

इसके पश्चात् लाला जीतमल जी मूगों वालों की सुपुत्री विमलवती जी को वैराग्य का रङ्ग चढ़ने लगा। दीक्षा की तैयारी हो रही थी। घरवालों ने अर्थात् लाला

इन्द्रचन्द जी जौहरी जो इनके ज्येष्ठ थे तथा अन्य परि-वार ने मिलकर नीति से संयम के परिषह दिखलाये। हर प्रकार से समझाया लेकिन जिनके हृदय में वैराग्य की उमगें उत्पन्न हो जाएँ वे कब मानें। अत. उन लोगों ने विनति की कि विमलवती सयम लेना चाहती है और यह सयम को भली भांति पालेगी क्योंकि यह सयम के रङ्ग में खून रङ्गी पड़ी है। अब इसका दीक्षा महोत्सव अवश्य होना चाहिये। प्रार्थना स्वीकृत हुई। ज्येष्ठ सुदि ६ का मुहूर्त निकाला गया। धन्य इस कुटुम्ब को। उन्होंने अपने सम्पूर्ण सम्बन्धियों को बुलाया और कहा कि यह विदुषी वैरागिन दीक्षा लेने को तैयार है। इसमें कई वर्षों से त्याग और वैराग्य के लक्षण दीख रहे हैं। हमने बहुत समझाया, परन्तु धर्मरङ्ग चढ़ता ही गया। अत अब ज्येष्ठ सुदि ६ का दिन दीक्षा के लिए नियत किया है।

श्री सती द्रौपदा जी महाराज ठाने ६ सदर विराज-मान थीं। घरवालों ने दीक्षा का प्रबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया। वे लोग सदर में आपके दर्शनों को आए और विनति की कि वैरागिन के वस्त्रों का प्रबन्ध किया

गया है । कृपा करके शहर पधारें । उनकी विनति स्वीकार कर आप शहर पधारीं ।

श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री पूज्यवर श्री सोहनलाल जी महाराज वा प्रवर्तिणी श्री पार्वती जी महाराज से दीक्षा की आज्ञा मंगवाई गई । देहली में इस समय श्री १००८ श्री श्री मोहरसिंह जी महाराज जुमला ठाने विराजमान थे । श्री श्री १००८ श्री राजमती जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री हीरादेवी जी, श्री पन्नादेवी जी आदि भी देहली शहर में विराजमान थीं । श्री श्री १००८ श्री तपस्विनी पूर्णादेवी जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री सोमादेवी जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री धन्नदेवी जी महाराज, श्री श्री१००८ श्री मोहनदेवीजी महाराज ठाने८ शहर पधारे । चतुर्विध संघ में बड़ा उत्साह था । घर २ स्तुति गाई जारही थी । हर प्रकार से नगर में धूमधाम, स्थानक में समारोह, धर्मजागरण हो रहे थे । लड्डू मिश्री आदि की भेंट, बेटी पोतियों दुहितियों को रुपये आदि देना, नौकर आदि को दान देना आदि कार्यों पर इन्द्रचन्द जी ने इस दीक्षा पर खुले दिल से खर्च किया । जीतमल जी ने

भी बहुत व्यय किया। दीक्षा जलूस बड़ी शान से निकला। फिर आपके चरणों में शिष्या को लाया गया। यह समय भी देखने योग्य था। मानों जगल में मगल होरहा था। भाई भी भाषणों से वैरागिन की महिमा गा रहे थे। परिवार की आखों से अश्रुधारा बह रही थी पर खुले दिल से उत्सव मना रहे थे। वेष बदलने के पश्चात वैरागिन के पिता और जेठ जी ने आपके चरणों में प्रार्थना की और मुनिराज जी ने पाठ पढाया। सती जी ने केश लुञ्चन किये। जय २ की ध्वनि होरही थी। यह सब श्री द्रौपदा जी की ही कृपा थी जो महा गुणवती विनयवती बाई मनमानी ऋद्धियों को छोडकर सयम के परिषह सहन करने पर आरूढ हुई।

सम्वत १९७७ का चातुर्मास्य शहर देहली में हुआ। इस चातुर्मास्य में शीतलमती जी और हरदेवी जी को वैराग्य-भाव हुआ। चातुर्मास्य में बाइयों को सम्यक्त्व, बारात्रत, थोकडे तथा हर तरह धर्म का लाभ हुआ। मार्गशीर्ष वदि में दोनों वैरागिनों को दीक्षा दी गई। आप जहा पधारतीं वहां ही धर्मलाभ होता। कई भाइयों ने मास मदिरा का परित्याग कर दिया।

आप देहली से होती हुई अम्बाला शहर में पधारीं। भाई और बाइयों की बिनति से आपने सम्वत् १९७८ का चातुर्मास्य स्वीकार किया। आठ सतियों का चातुर्मास्य हुआ। व्याख्यान में श्री भगवती सूत्र फरमाते थे। आपके व्याख्यानों में भाई बाइयों की खूब रोनक होती थी। अन्य धर्मी बाइयां आतीं और तरह २ के प्रश्न करती थीं आपके उत्तरों से उनकी शङ्काओं का समाधान हो जाता था। आर्याओं और बाइयों ने तपस्या काफ़ी की। दोपहर को रामायण की कथा होती थी। व्याख्यान में इस क़दर भीड़ होती थी कि मकानमें जगह मुश्किलसे मिलती थी। धर्मध्यान का बहुत उद्यम हुआ। चातुर्मास्य समाप्त कर आप सब सतियों के साथ होश्यारपुर पहुँचीं। यहां श्री महासती जी महाराज के दर्शनों का लाभ उठाया। कुछ दिनों बाद आप जालन्धर, कपूरथला, लाहौर और गुजरांवाला होती हुईं स्यालकोट पधारीं। यहां की रौनक का क्या कहना। वहाँ श्री श्री १००८ श्री गणावच्छेदक श्री लालचन्द जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री गोकुलचन्द जी महाराज तथा अन्यान्य मुनिराजों के

दर्शन किए। गणावच्छेदक श्री श्री १००८ श्री लालचन्द जी महाराज से भाइयों ने विनति की कि महाराज ! श्री द्रौपदा जी महाराज के व्याख्यान सुनने की अत्यन्त अभिलाषा है। महाराज जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर सती जी को आज्ञा दी कि आप व्याख्यान करें। श्री सती जी ने प्रार्थना की कि महाराज ! मुनिराजों की उपस्थिति में सतियों का व्याख्यान नहीं होता। श्री महाराज जी ने फरमाया आर्या जी ! जब गुरु की आज्ञा हो और परिषद् की सुनने की इच्छा हो, तो क्यों नहीं किया जाय ? मेरा अनुरोध है, आप व्याख्यान करें।

आपने महाराज जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर उपदेश दिया। परिनक व्याख्यान भी हुए। परिषद् क्या थी पर समारोह मालूम पड़ता था। उपदेश से जनता पर बहुत असर हुआ। आपने स्यालकोट में एक बाई को दीक्षा दी। जिसका महोत्सव लाला भानुशाह जी ने किया। आपके उपदेशामृत से दो भाइयों ने एक लाला पन्नाशाह के सुपुत्र लाला देसराज की धर्मपत्नी जिसका शुभ नाम रत्नदेवी और दूसरी लाला दौलतशाह के भाई लाला

जट्टू शाह जी की धर्मपत्नी जैनमती को वैराग्यभाव हुआ। वे आपके उपदेशामृत से कृतकृत्य हो गईं। फिर आपसे चातुर्मास्य के विषय में जम्मू वालों ने विनति की। जम्मू वाले भाइयों की विनति पर श्री द्रौपदां जी ने अन्य आर्याओं के साथ जम्मू में १९७९ का चातुर्मास्य किया।

स्यालकोट से चलकर रास्ते में रणवीरसिंह पुरा में पधारीं। वहां स्यालकोट के भाई बाइयों और जम्मू वालों का मिलाप देखने योग्य था। आपका व्याख्यान मंदिर में हुआ। जैनाजैन जनता में आपका उपदेश आत्मा पर-मात्मा पर हुआ। अपनी आत्मा, दूसरों की आत्मा और परमात्मा (जो परम पवित्र, कर्मरहित शुद्ध आत्मा है), एक ही हैं। हे भव्य प्राणियो! विचार करो कि आत्मा और परमात्मा में क्या भेद है? सद्कर्म से आत्मा ही परमात्मा बनती है।

वहां एक रात्रि रहकर आप जम्मू पधारीं। सम्वत् १९७९का चातुर्मास्य जम्मू में हुआ। दोनों समय व्याख्यान होते थे। श्रोताजन बड़े शौक से आते थे। आर्याओं ने बहुत तपस्या की। बाइयों ने भी खूब ज्ञानाभ्यास किया।

मैजर जनरल राय बहादुर दीवान विशनदास जी आपसे शास्त्र सुनकर शंका समाधान किया करते थे। इस चातुर्मास्य में धर्मकार्य खूब जारी रहा । चातुर्मास्यानन्तर जम्मू से आप स्यालकोट लौटीं। वहा से वजीराबाद होती हुई रावलपिण्डी पधारीं।

सम्वत् १९८० का चातुर्मास्य रावलपिण्डी में हुआ। यहा गणावच्छेदक श्री श्री १००८ श्री शिवदयाल जी महाराज और श्री धनीराम जी महाराज अन्य साधु महात्माओं के साथ विराजमान थे । जैन दिवाकर श्री श्री उपाध्याय श्री१००८ श्री आत्मारामजी महाराजके शिष्य श्री श्री १००८ श्री प्रसिद्धवक्ता स्वामी खजानचन्द जी महाराज भी यहा पधारे हुए थे । आप ने उनके दर्शनों का लाभ उठाया । मुनिराजों की आज्ञा से आपका व्याख्यान बड़े स्थानक में होता रहा । लोग व्याख्यान के पश्चात् दुकानें खोलते थे। आपका सितारा बड़ा ही रोशन था। यहा आपने श्रावक धर्म पर भली भान्ति विवेचन किया।

श्रावक (गृहस्थ) धर्म



सन्मार्ग पर आरूढ़ होने के लिए, प्रथम मार्गानुसारी के गुणों से युक्त होना आवश्यक है। अर्थात् श्रावक धर्म धारण करने की यह पहली सीढ़ी है। मार्गानुसारी की शिक्षाएँ ऐसी सरल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति इन पर आचरण कर सकता है। नीचे मार्गानुसारी के ३५ गुणों का संक्षेप से उल्लेख किया जाता है। जिनको श्री हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र के प्रथम प्रकाश में प्रतिपादन किया है।

न्यायसम्पन्नविभवः शिष्टाचार प्रशंसकः ।
कुलशीलसमैः सार्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥
पापभीरुः प्रसिद्धञ्च देशाचारं समाचरन् ।
अवर्णवादी न क्वापि राजादिषु विशेषतः ॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ।
अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥
कृतसङ्गः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ।
त्यजन्नुपप्लुत स्थानमप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥

व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः।
अष्टभिर्धीगुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहम्॥
अजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च सात्म्यतः।
अन्योऽन्याप्रतिबन्धेन त्रिवर्गमपि साधयन्॥
यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत्।
सदानभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च॥
अदेशाकालयोश्चर्यां त्यजन् जानन् बलाबलम्।
वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः।
सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः॥
अन्तरङ्गारिषड्वर्गपरिहारपरायणः।
वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते॥

१ न्यायसम्पन्नद्रव्य— धन, न्यायपूर्वक उपार्जन करना चाहिये। स्वामीद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासी को ठगना और चौर्यादि निन्दनीय व्यवहारों का त्याग करके अपनी वृत्ति अनुसार सदाचार से धन पैदा करना चाहिये।

२ शिष्टाचार प्रशंसा— ज्ञान से वृद्ध अथवा वय (आयु) से वृद्ध पुरुषों, जिनसे उत्तम शिक्षा की प्राप्ति हो, के

आचार की प्रशंसा करनी चाहिये।

३. समान कुल, आचार, धर्मवालों तथा अन्य गोत्र में विवाह करना चाहिये। अर्थात् अपने कुल, धर्म, आचार और स्थिति में समान गृहस्थों से विवाह सम्बन्ध होने चाहिएँ पर निजगोत्र में नहीं होने चाहिएँ।

४. पापभीरु– हर प्रकार के पाप से डरना चाहिये। पापकर्म करने से लोगों में निन्दा होती है और परलोक भी बिगड़ता है।

५. देशाचारं समाचरन्– स्वदेशानुसार भोजन, पान, वेष-भूषा आदि होने चाहिएँ। इनके प्रतिकूल प्रवृत्ति होने से लोगों में निन्दा होती है तथा विरोध भी होता है।

६. जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट प्राणियों के सम्बन्ध में अवर्णवाद न बोलने चाहिये। अवर्णवाद (गाली देने) से दूसरों का पराभव करने तथा आत्मप्रशंसा कराने की दुर्भावना पैदा होती है। जिससे जन्मान्तर में नीचगोत्र का बन्ध होता है जिससे कोटिशः वर्षों तक छुटकारा होना कठिन हो जाता है। और भी राजा, मन्त्री, कोतवाल आदि अधिकारियों के सम्बन्ध में अवर्णवाद [बुरे शब्दों

का प्रयोग] करने से तत्काल विपरीत परिणाम होता है।

७ अनतिव्यक्त निवास— अनतिगुप्त निवास और अशुद्ध स्थान तथा अनेक निर्गम द्वारों वाले गृह में निवास नहीं करना चाहिये। अर्थात् अतिप्रकट स्थान में तथा अतिगुप्त स्थान में निवास गृह नही होना चाहिये। अति प्रकट निवास होने से चौरादि का भय होता है और अतिगुप्त निवास होने से अग्नि आदि उपद्रव के समय बडी मुश्किल का सामना होता है, और बुरे आचार विचार वाले पडोस में भी निवास नहीं होना चाहिये। अपरञ्च जिस घर में आने जाने के बहुत से द्वार हों वहा भी निवास नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे भी कई उपद्रव होने सभव हैं।

८ सत्सङ्ग— अच्छे, सद्गुणी मनुष्यो की सङ्गति करनी चाहिये। कुसङ्गति से सदैव बचना चाहिये।

९ माता पिता की आज्ञानुसार रहना चाहिये। तथा उनकी सेवा में तत्पर रहना चाहिये।

१० जहा राजा से भय हो। दुर्भिक्ष महामारी आदि उपद्रव हैं वहा नहीं रहना चाहिये।

११ देश, जाति और कुल की अपेक्षा से गर्हित कार्य,

जैसे मांस मदिरा आदि का व्यापार, मदिरापान आदि दुर्व्यसनों का त्याग करना चाहिये ।

१२. अपनी आय (आमदनी) के अनुसार व्यय (खर्च) होना चाहिये । अपनी आय का यथाशक्ति दसवां भाग धर्मकार्य (परमार्थ) में लगाना चाहिये ।

१३. अपने धन के अनुसार वेष होना चाहिये । अर्थात् यथास्थिति वस्त्रभूषण धारण करने उचित हैं ।

१४. धर्म श्रवण करने की इच्छा, धर्म श्रवण करना, शास्त्र का अर्थ ग्रहण करना (समझना), स्मरण करना, तर्क करना, सन्देह नहीं करना, पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना और तत्वज्ञान ये आठ बुद्धि के गुण हैं । अतः अष्ट गुण पूर्ण बुद्धि से शास्त्र सुनने में तत्पर रहना चाहिये ।

१५. निरन्तर धर्मश्रवण करना चाहिये । इससे उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि होती है ।

१६. अजीर्ण होने पर भोजन त्याग करना चाहिये । क्योंकि उससे कई रोगों की सम्भावना होती है । मल और वायु की दूषित गन्ध, विष्ठा का थोड़े २ आना, शरीर

भारी होना, अरुचि होना, डकार खराब आना ये ६ अजीर्ण के लक्षण हैं।

७ काले भोक्ता– भोजन नियत समय पर करना चाहिये। रुचिकर भोजन स्वादवश अधिक भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा होने पर अग्निमन्दता, विरेचन, वमन आदि कई रोग उत्पन्न होते हैं।

८ अन्योन्य बाधा न हो वैसे धर्म, अर्थ और काम इन तीन वर्गों का सेवन होना चाहिये। अकेले काम के सेवन में धन तथा धर्म दोनों की हानि होती है। केवल धन संग्रह करने से उस धन का भोक्ता कोई और ही होता है और पाप स्वयं बन्ध करने से उसका भुक्तान भी स्वयं करना पड़ता है। सिर्फ धर्म सेवन करने से गृहस्थाश्रम का संचालन ठीक नहीं हो सकता। अतएव ज्यों किसी एक वर्ग के सेवन से दूसरे वर्गों के सेवन में बाधा न आए वैसे समयोचित त्रिवर्ग-साधन के समय नियत होने चाहिएँ।

९ अतिथि, साधु, स्वधर्मी को यथाशक्ति आदरपूर्वक दान देने में प्रवृत्त होना चाहिए और दीन-दुःखी लोगों पर अनुकम्पा (दया) लानी चाहिये और यथाशक्ति

उनके दुःख निवारण में सहायता करनी चाहिये।

२०. मिथ्या हठ नहीं करना चाहिये।

२१. गुणी, विद्वान, सच्चरित्र पुरुषों का पक्षपात करना उचित है. और उनका मान, सहायता तथा अनुकरण करना चाहिये। क्योंकि गुणी जनों के गुण के पक्षपात से स्वयं भी गुणी बनते हैं।

२२. शास्त्र और राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। अर्थात् जिस स्थान या जिस समय में आने जाने में राज्य की ओर से प्रतिबन्ध हो और जिस कार्य के करने में राजा की आज्ञा अथवा शास्त्र की दृष्टि से निषेध हो वे नहीं करने चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से अनेक विपत्तिएँ और धर्म की हानि उठानी पड़ती है।

२३. सर्वदा अपने बलाबल को देखकर, परिणाम को सोच समझ कर कार्य करना चाहिये।

२४. धर्म में स्थिरचित्त, सम्यक् आचार वाले, व्रतधारी और ज्ञानवान मनुष्यों की यथाशक्ति सेवा भक्ति करनी चाहिए।

२५. माता पिता, स्त्री पुत्र आदि स्वकुटुम्ब का पालन पोषण करना चाहिये।

२६ दीर्घदर्शी– प्रत्येक कार्य आरम्भ करने से पहले उसके शुभाशुभ फलादि का खूब विचार कर लेना चाहिये।

२७ विशेषज्ञ– सामान्य और विशेष बातों से परिचित होना चाहिये। अर्थात् वस्तु, अवस्तु; कार्य, अकार्य; स्व, पर; इत्यादि के अन्तर का ज्ञाता होना चाहिये।

२८ कृतज्ञ– उपकारी के उपकार को स्मरण रखना चाहिये। एहसानमन्द होना चाहिये।

२९ लोकवल्लभ– ऐसे कार्य करने चाहिएँ जो सब लोगों को प्रिय प्रतीत हों। हर एक जीव को सुख शान्ति पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिये।

३० लज्जावन्त– लज्जावान होना चाहिये। लज्जालु मनुष्य प्राणसङ्कट होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा को खण्डित नहीं करता।

३१ दयालु– दुःखी जीवों के दुःख दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये, और हर जीव पर दया करनी चाहिये। क्योंकि दया धर्म का मूल है।

३२ सौम्य– शांत स्वभाव और विनयवान् होना चाहिये

३३ परोपकारी– परोपकार में सदा तत्पर रहना चाहिये।

३४. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्षा इन ६ आंतरिक शत्रुओं का दमन करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये।

मद आठ तरह का होता है— १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ऋद्धिमद, ६ लोभमद, ७ तपमद, ८ विद्यामद।

३५. श्रवण, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्शेन्द्रिय इन पांच इन्द्रियों को वश में करना चाहिये।

उपर्युक्त ३५ गुणों से सम्पन्न पुरुष धर्माचरण के योग्य होता है। क्योंकि ऐसे गुणों से मनुष्य पवित्र हो जाता है और श्रावक वा साधु धर्मधारण कर शांति प्राप्त कर सकता है। अतः हर जिज्ञासु को प्रथम सामान्य धर्म के उपर्युक्त गुण धारण करने का प्रयत्न करना चाहिये, और सप्त व्यसन अवश्य त्याग देने चाहिये।

द्यूतञ्च मांसञ्च सुरा च वेश्या,
पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा।
एतानि सप्तव्यसनानि लोके,
घोरातिघोरे नरके नयन्ति॥

भावार्थ— जुआ, मांस, शराब, वेश्या, शिकार, चोरी

और परस्त्रीगमन ये सात कुव्यसन घोर नरक के कारण हैं।

स्मरण रहे कि इन व्यसनों के सेवन से लोकनिंदा होती है, राजदण्ड भी प्राप्त होता है और परलोक में नरक की यातनाएँ सहनी पडती हैं। धर्माभिलाषी मनुष्यों को अवश्यमेव इनसे दूर रहना चाहिये।

श्रावक धर्म

सम्यक्त्व अर्थात् सच्चे देव गुरु और धर्म पर श्रद्धा करके मार्गानुसारी के नियमों पर आचरण करते हुए सप्त व्यसन त्याग कर श्रावक के बारह व्रतों को ग्रहण किया जाता है। श्रावक के व्रतों को अणुव्रत कहते हैं क्योंकि श्रावक से साधु जैसे महाव्रत पूर्णतया पालन नहीं हो सकते वे बहुत कठिन होते हैं अत श्रावक के व्रतों को अणुव्रत कहते हैं।

सम्यक्त्व के पांच अतिचार जो श्रावक को वर्जनीय हैं

१ वीतराग के वचन में शङ्का करना।

२ परमत की आकांक्षा करना।

३ पुण्य पाप कर्मों के फल के विषय में सन्देह करना।

४ पाखण्डियों की प्रशंसा करना।

५ पाखण्डियों से परिचय तथा सङ्गति करना।

प्रथम अणुव्रत



थूलाउ पाणाइ वायाउ वेरमणं।

स्थूल जीव हिंसा से बचना। संकल्प से निरपराधी त्रस जीवों की हिंसा न करना और अपराधी जीवों यथा चोर, आक्रमणकारी, सर्प, विच्छु, सिंह आदि से निर्दयतापूर्वक बर्ताव न करना और पांच स्थावर जीवों की दो करण और तीन योगों से मर्यादा करना प्रथम अणुव्रत है।

इन व्रतों के पालने में यत्न की आवश्यकता है। प्रथम व्रत में निम्न कार्यों में विशेष यत्न करना चाहिये।

पाखाना (टट्टी) में अपने या दूसरे के किये हुए पाखाने पर पाखाना नही फिरना चाहिये। जहा, कीडे मकौडे हों, पृथ्वी में छिद्र हों और राख के ढेर हों, वहां भी नहीं जाना चाहिये। और वहा पेशाब भी नहीं करना चाहिये। बिना देखे भाले नाली में मल-मूत्र त्याग करना उचित नहीं। बिना देखे भाले कपडों का धोना या दूसरे से धुलवाना नहीं चाहिये। नाली या पृथ्वी पर उष्ण जल नहीं डालना चाहिये। आटा, दाल, वनस्पति आदि सब खाने पीने के पदार्थों तथा तवा, चूल्हा, लकडी आदि वस्तुओं को बिना देखे भाले उपयोग में न लाना चाहिये। जल मोटे कपडे से छाने बिना नहीं पीना चाहिये। दूध, दही या इसी प्रकार की खाने पीने की वस्तुओं के पात्र ढांप कर रखने चाहिएँ इत्यादि २।

इस अणुव्रत के ५ अतिचार(दोष)त्यागने योग्य है

१ क्रोधवश किसी मनुष्य तथा पशु को दृढ बन्धन से बाधना, अथवा पिंजरे आदि में बन्द करना।

२ छडी, लाठी आदि से मारना।

३ शरीर के अङ्गोपाङ्ग को काटना या उसे निरर्थक करना।

४ नौकर वा पशु आदि पर शक्ति से अधिक बोझ लादना तथा नियत समय और शक्ति से अधिक काम लेना।

५ उन्हें भूखा प्यासा रखना।

इस अणुव्रत में कई जैन पारिभाषिक शब्द आए हैं, उनका आशय लिखा जाता है।

त्रस जीव– चलने फिरने वाले च्यूंटी, मकड़ी, गाय, भैंस, घोड़ा और मनुष्य ये सब त्रस जीव कहलाते हैं।

सङ्कल्प– मन द्वारा अथवा इच्छापूर्वक जान-बूझ कर कार्य करना।

स्थावर जीव– गतिरहित जीव। जैसे पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति।

करण– करने, कराने और अनुमोदन करने को करण कहते हैं।

योग– मन, वचन और काया को योग कहते हैं।

दूसरा अणुव्रत



थूलाओ मुसावायाओ वेरमणम् ।

भावार्थ– स्थूल मृषावाद (असत्यभाषण) का त्याग अर्थात् कन्या, गौ और भूमि के सम्बन्ध में झूठ बोलना । स्थापन मृषा [अमानत में ख्यानत] झूठी साक्षी देना आदि का त्याग । आशय यह कि जिस असत्य भाषण से संसार में निन्दा और राज्य की ओर से दण्ड प्राप्त हो, उससे दो करण और तीन योग से निवृत्त होना द्वितीय सत्य अणुव्रत है ।

इस व्रत के निम्न ५ अतिचार छोड़ने योग्य हैं ।

१ बिना सोचे विचारे किसी पर असत्य दोषारोपण करना ।

२ किसी की गुप्त बात को प्रकट करना ।

३ पति पत्नि का रहस्योद्घाटन करना ।

४ दूसरों को असत्य बोलने में प्रवृत्त करना ।

५ झूठे लेख अर्थात् बनावटी लेख लिखना ।

तीसरा अणुव्रत

थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ।

भावार्थ – स्थूल चोरी का त्याग, यथा सेंध लगाना, किसी के सन्दूक को विना आज्ञा ताली लगाना वा खोलना और तोड़ना । मार्ग में डाका डालना, लूटना, किसी की गिरी हुई, रक्खी हुई वस्तु को बिना आज्ञा उठाना; इत्यादि का त्याग तीसरा अणुव्रत है । निष्कर्ष यह है कि स्वामी की आज्ञा विना गिरी हुई, रक्खी हुई, पड़ी हुई आदि वस्तु को नहीं लेना चाहिये । इस अणुव्रत के ५ अतिचार त्यागने योग्य हैं ।

१. चोर की चुराई वस्तु को लोभवश लेना ।

२. चोर को चोरी के लिए प्रेरणा करना तथा उसकी सहायता करना ।

३. राज्य नियमों को भंग करना अर्थात् उनके विरुद्ध काम करना जैसे महसूल आदि की चोरी करना आदि ।

४. गलत तोल माप से व्यवहार करना ।

५. शुद्ध वस्तु में अशुद्ध मिलाकर देना । असली दिखाकर नकली देना या असली और नकली मिलाकर देना ।

चतुर्थ अणुव्रत

स्वदार; स्वपति सन्तोष ।

स्थूल मैथुन का त्याग । यथा पुरुष को अपनी विवाहिता पत्नी पर सन्तोष करना और स्त्री को पतिव्रता होना चाहिए । परस्त्री, वेश्या, कुमारी और विधवा जो किसी की स्त्री नहीं हैं, उनका भी त्याग करना चाहिये। इस अणुव्रत का आशय परस्त्री का सर्वथा त्याग और स्वस्त्री का परिमाण करके विषयभोग (काम) पर काबू पाना है। इस अणुव्रत के निम्न ५ अतिचार हैं।

१ छोटी अवस्था की स्वस्त्री से सम्भोग करना ।

२ अपनी सगाई वाली कन्या से सम्भोग करना ।

३ कुचेष्टा अर्थात् हस्त मैथुन आदि करना ।

४ अपने सम्बंधियोंके अतिरिक्त दूसरोंका विवाह कराने में तत्पर रहना । दूसरेकी मांगका अपने साथ विवाह करना।

५ काम भोग में तीव्र अभिलाषा रखना अर्थात् ऋतुगामी न होकर विषयभोग में प्रवृत्त रहना और कामवृद्धि के लिए औषध उपयोग करना ।

षष्ट प्रथम गुणाव्रत दिग्व्रत

थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणम् ।

क्षेत्र, वस्तु,[भूमि और घर] चांदी-सोना, धन-धान्य दास-दासी, गाय-भैंस आदि पशु तथा घर के उपकरण (वस्त्र, पात्र, शय्या आदि) का परिमाण करना । तृष्णा को कम करना और सन्तोष धारण करना ही इस अणुव्रत का आशय है । इस व्रत के निम्न अतिचार छोड़ने योग्य हैं ।

अपने नियत परिमाण से १ क्षेत्रवस्तु, २ चांदी सुवर्ण, ३ धन धान्य, ४ द्विपद चतुष्पद, ५ गृह उपकरण अधिक रखना ।

इन पांच अनुव्रतों की रक्षा के लिए तीन अनुव्रत और चार शिक्षाव्रत प्रतिपादन किए गये हैं । छटे, सांतवें और आठवें अणुव्रत को प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणाव्रत कहते हैं । नवमा, दशमा, ग्यारहवां और बारहवां अणुव्रत प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ शिक्षाव्रत कहलाता है ।

छटा दिग्व्रत प्रथम गुणव्रत

चारों दिशाओं वा चारों उपदिशाओं में तथा ऊर्ध्व वा अध इन दश दिशाओं में आने जाने के मार्ग का परिमाण करना इस व्रत का आशय है । इस व्रत के ५ अतिचार छोडने योग्य हैं।

१ ऊर्ध्व दिशा में जाने का जहा तक परिमाण किया हो उसे उल्लघन करना।

२ अधो दिशा के परिमाण को अतिक्रमण करना ।

३ तिर्यग् अर्थात आठों मध्य दिशाओं के परिमाण को उत्क्रमण करना ।

४ आने जाने की नियत सीमा वढा लेना शका होने पर कि यहां परिमाण पूर्ण होगया है, आगे चलते रहना ।



सातवां द्वितीय गुणव्रत

भोगोपभोग परिमाणानुव्रत ।

जो वस्तु एकबार व्यवहार में लाई जाती है, वह भोग और जो बारम्बार प्रयुक्त हो, वह उपभोग कहलाती है। यथा भोजन, फल, औषध आदि भोग; और कपड़े, मेज़, कुर्सी, घर आदि उपभोग हैं। इनकी मर्यादा अर्थात् परिमाण करना सप्तम अणुव्रत कहलाता है। इनमें तौलिया आदि निम्नलिखित २६ प्रकार की वस्तुओं की मर्यादा करनी चाहिये।

१ तौलिया, २ दातुन, ३ फल, ४ तैल, ५ उबटन, ६ मंजन, ७ कपड़े, ८ विलेपन, ९ पुष्प, १० आभूषण, ११ धूप, १२ पेय पदार्थ, १३ खाद्य पदार्थ, १४ ओदन, १५ दाल, १६ घृतादि रस, १७ शाक, १८ शुष्क फल, १९ भोजन, २० जल, २१ ताम्बूल, २२ वाहन, २३ जूती, २४ शय्या, २५ सचित वस्तु, २६ द्रव्य आदि।

इस व्रत के ५ अतिचार छोड़ने योग्य हैं।

१. मर्यादा से अधिक सचित वस्तु का आहार करना।

२ सचित वस्तु में चीजों को रखकर खाना।

३ अपक्वाहार करना।

४ दुष्पक्वाहार करना।

५ तुच्छ ओषधि [जो पदार्थ खाने की अपेक्षा फेंकने में अधिक आए] का भक्षण।

निम्नलिखित १५ कर्मादान, का त्याग भी इसी के अन्तर्गत है।

१ कोयलों का व्यापार, २ वन कटवाने का व्यापार, ३ गाडी, टांगा, शकट का व्यापार, ६ दांत, अस्थि, सींग, चर्मादि का व्यापार, ८ मदिरा आदि रसों का व्यापार, ९ गाय, भैंस, पशु-पक्षियों और मनुष्यों को बेचने का व्यापार, १० विष बेचने का व्यापार, ११ कोल्हू आदि यन्त्रों का व्यापार, १२ पशुओं को नपुंसक करने का व्यापार, १३ वन को आग लगाने का व्यापार, १४ तालाब, कुआ, बावडी आदि सुखाने का अथवा नदियों के बहाव को उलटाने का व्यापार, १५ हिंसक जीवों का पालन-पोषण करना, बेचना और कसाई से व्यापार करना। बिल्ली, कुत्ते, बाज आदि का व्यापारार्थ पालन-पोषण करना।

अठवां तृतीय गुणाव्रत

अनर्थदण्ड विरमण ।

विना प्रयोजन आत्मा को पापमय बनाना, जिस काम से लाभ भी कोई न हो और आत्मा भी पापलिप्त हो, वह अनर्थदण्ड कहलाता है । वह चार प्रकार का होता है ।

अपध्यानाचरण- बुरे तथा क्रूर विचारोंका चिन्तन करना ।
प्रमादाचरण– धर्मप्रतिकूल क्रियाओं में तत्पर रहना ।
हिंसाप्रदान– आग तथा शास्त्र आदि का दान ।
पापकर्मोपदेश– पापकारी कामों का उपदेश देना ।

इस व्रत के ५ अतिचार छोड़ने योग्य हैं ।

१ काम भोग की वासना उत्पन्न करने वाली बातें तथा चेष्टाएँ ।

२ उपहास ।

३ बिना विचारे भाषण करना ।

४ हिंसक सामग्री का संग्रह ।

५ आवश्कता से अधिक भोग-उपभोग सामग्री का संग्रह

ना आवश्यकता के पृथ्वी को खोदना, पानी फैंकना, रा करना, रास्ते में चलते समय वृक्षों के पत्ते तथा तृण ोडना, विना प्रयोजन घूमना आदि।

नवमा सामायिक शिक्षाव्रत

समय विशेष (न्यूनातिन्यून दो घडी पर्यन्त) के लिए ाग-द्वेप से निवृत्त होकर, सब जीवों पर समभाव रखने से ानदर्शन और चरित्र का लाभ होता है आत्मा को ान्ति प्राप्त होती है, इसी का नाम सामायिक है। मतः दो घडी के लिए आत्मा को शुद्ध पवित्र करने के लये सविधि दोनो समय न्यूनातिन्यून एक समय सामा-येक अवश्य करनी चाहिये। इसके पाच अतिचार हैं।

१, २, ३, सामायिक में मन, वचन और शरीर को बुरे वेचारो में प्रवृत्त करना।

४ सामायिक के समय को विस्मृत कर देना।

५ सामायिक का काल पूर्ण होने से पूर्व सामायिक का उपारण कर लेना।

दशम देशावकाशिक शिक्षाव्रत

देशावकाशिक– छटे दिग्व्रत में जो दश दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा की जाती है। उस मर्यादित परिमाण में नियत समय के लिए या नित्यप्रति संक्षेप करना और सातवें व्रत में जिन पदार्थों की मर्यादा की जाती है उन मर्यादित चीजों को संक्षेप कर चतुर्दश नियम धारण करने को दशवां देशावकाशिक अनुव्रत कहते हैं। चतुर्दश नियम निम्नलिखित हैं।

१ सचित– पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति की मर्यादा करना।

२ द्रव्य– अपनी अंगुली के अतिरिक्त जो खाद्य पदार्थ मुख में डाले जाएँ, वे द्रव्य कहलाते हैं।

३ विगय– दूध, घी, मक्खन, तेल, गुड़ आदि की मर्यादा।

४ उपानह– जूता, जराव, सलीपर, चपली आदि पांव में पहिनने की वस्तुओं की मर्यादा।

५ ताम्बूल– पान, सुपारी, लौंग, इलायची आदि का परिमाण।

६ वस्त्र– ओढने, पहिनने और बिछोने के वस्त्रों की मर्यादा ।

७ कुसुम– पुष्पों वा फूलमालाओं की मर्यादा करना ।

८ वाहन– सवारी का परिमाण करना ।

९ शयन– बैठने और सोने के लिए कुर्सी पलग आदि का परिमाण ।

१० विलेपन– केसर, चन्दन, तैल, उवटन आदि लेपों की मर्यादा ।

११ ब्रह्मचर्य ।

१२ दिग्परिमाण– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण वा उप-दिशाएँ, और ऊँची तथा नीची इन दश दिशाओं में आने जाने की मर्यादा ।

१३ स्नान आदि की मर्यादा ।

१४ भक्त- आहार (खाद्य पदार्थ)और पानी का परिमाण ।

इस व्रत के ५ अतिचार छोडने चाहियें ।

१ आनयन प्रयोग– मर्यादित भूमि से वाहिर की वस्तु मगाना ।

२ प्रेष्यप्रयोग– मर्यादित भूमि से वाहिर वस्तु भेजना ।

३ शब्दानुपात- परिमाण की हुई भूमि से बाहिर शब्द द्वारा संदेश पहुँचाना ।

४ रूपानुपात– परिमाणित भूमि में अपने रूप को दिखा कर बाहिर कोई काम कराना ।

५ पुद्गलाक्षेप- परिमाण की हुई भूमि से बाहिर कोई वस्तु फैंककर अपने भावों को व्यक्त करना ।

इस व्रत का आशय यह है कि नित्यप्रति तृष्णा का निरोध करते हुए बिना परिमाण कोई भी वस्तु प्रयोग न करे ।

तृतीय शिक्षाव्रत

(पौषधोपवास)

अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में सांसारिक कार्य व्यवहार से निवृत्त होकर अन्न पान मिष्टान्नादि और ताम्बूल आदि चतुर्विध आहार का त्याग करें, शरीर के शृङ्गार, शस्त्र आदि का त्याग करके एक स्थान पर बैठ कर, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों की रक्षा करना और अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पूर्णतया पालन करना तथा अपनी आत्माको यथाशक्ति ज्ञान-ध्यान और सन्मार्ग पर आरूढ़ करना, पौषधोपवास तृतीय शिक्षाव्रत कहलाता है।

इस व्रत के ५ अतिचार हैं।

१ शय्या या संस्तारक प्रतिलेखन न करना।

२ बुरी तरह प्रतिलेखन करना।

३ शय्या या संस्तारक प्रमार्जन न करना।

४ बुरी तरह प्रमार्जन करना।

५ पौषध में निंदा तथा स्त्री, राज्य, देश, भोजन, कथा और प्रमाद करना।

चतुर्थ शिक्षाव्रत

(अतिथि संविभाग)

साधु मुनि, महाराज, गुणी, ज्ञानी पुरुषों को निर्दोष चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, लोई, कम्बल, चौकी, पाट, घास, औषध-भैषज्य आदि उनकी वृत्तिके अनुकूल; विनय सहित, आदर पूर्वक देना इस व्रतका आशय है। स्वधर्मी गृहस्थियों की यथाशक्ति सहायता और उनका आदर सत्कार भी इसी व्रत के अन्तर्गत है। इस व्रतके ५ अतिचार छोड़ने योग्य हैं।

१ दान देने की वस्तु को सचित वस्तु से ढांपकर देना।
२ दान देने की वस्तु को सचित वस्तु में रखकर देना।
३ दान देने के समय को यों ही व्यर्थ व्यतीत कर देना।
४ दूसरों को दान का उपदेश देना किन्तु स्वयं दान न देना।
५ कपट तथा क्रोधपूर्वक, मलिनभाव से, कीर्ति के लिए और मत्सर भाव से दान देना।

यों धर्म का स्वरूप समझाती हुई चातुर्मास्यानन्तर रावलपिण्डी से विहार कर रोहतास पहुँचीं। वहां भी धर्म-ध्यान का उद्यम हुआ। वहां से गाव प्रतिगाव होती हुई बजीराबाद पधारीं। वहा गुजरावालाके लाला निहालशाह लाला दीवानशाह, लाला ठाकुरदास और अन्य भी बडे रईस आपके दर्शनों को आए। उन्होंने प्रार्थना की कि आप हमारे शहर गुजरांवाला को पावन करें और हमारे यहा चातुर्मास्य की विनती स्वीकार करें। आपने फर्माया कि भाई जी! अभी तो हमारा ख्याल स्यालकोट जाने का है। वहा जाकर जैसा विचार होगा देखा जायेगा। भाइयों ने इस बात को न माना और प्रार्थना की कि महाराज! हम तो यहा से तभी उठेंगे, जब आप हमारी विनती पर स्वीकृति फर्मा देंगे। आपने भाइयों के विचार और समयको विचारते हुए उत्तर दिया कि जैसी महासती जी की आज्ञा होगी वैसा किया जाएगा। इस वाक्य को सुनकर भाइयों को अतिप्रसन्नता हुई. और धन्य २ की ध्वनि करते हुए उन्होंने मस्तक झुका दिये।

आप वहां से स्यालकोट पधारे। वहां श्री श्री १००८ श्री गणावच्छेदक श्री स्वामी लालचन्द जी महाराज के दर्शन किए। सम्वत १६८१ का चातुर्मास्य गुजरांवाला में हुआ। इस चातुर्मास्य में तपस्या बहुत हुई। आपने उपदेश दिया कि हे भाइयो तथा बहिनो! आजकल आप लोग अपने कर्तव्य को छोड़कर किस ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। प्रातः उठकर माला सामायिक, जप, पाठ तथा गुरु के उपदेश श्रवणादि को भुला दिया है। आप माता-पिता, बड़े पूर्वजों के चरणों में शीश झुकाने लजाते हैं। सायङ्काल भी जप, पाठ प्रतिक्रमणादि नहीं करते। बिना छाने पानी पीने का विचार नहीं रखते। रात्रि भोजन का त्याग छोड़ दिया है। कन्द-मूल, भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं रहा।

सज्जनो! मनुष्य जन्म, जैनकुल, सर्वज्ञ प्ररूपित निर्मलधर्म मिलने पर भी इन बातोंका विचार नहीं तो फिर कब होगा? सब धर्म अहिंसा को परमधर्म बतला रहे हैं और पुकार रहे हैं कि यह संसार नश्वर है। एक धर्म ही सुख देने वाला है। बिना छाने पानी का प्रयोग सर्वज्ञों ने दोष-जनक बतलाया है।

विंशत्यंगुलायतन्तु त्रिंशदंगुलविस्तृतम् ।
तद्वस्त्र द्विगुणीकृत्य गालयित्वा पिबेज्जलम् ॥

भावार्थ– बीस अंगुल चौडा और तीस अंगुल लम्बा वस्त्र हो, उसको दोहरा करके, उसमें छानकर पानी पीना चाहिये।

तस्मिन्वस्त्रे स्थिताञ्जीवान् स्थापयेज्जलमध्यतः ।
एवं कृत्वा पिबेत्तोयं याति परमां गतिम् ।

अर्थ– उस वस्त्र के अन्दर रहे हुए जीवों को कूडा वगैरह की जगह पहुँचाना चाहिये। इस तरह करके जो मनुष्य पानी पीता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है।

विष्णुपुराण–

ग्रामाणां सप्तके दग्धे यत्पापं समुपद्यते ।
तत्पापं जायते पार्थ ! जलस्यागलिते घटे ॥

हे पार्थ ! सात गांव जला देने से जितना पाप होता है, उतना ही पाप बिना छाना पानी घडे में भरने से होता है।

अतः हे जैनी भाइयो ! बिना छाना पानी नहीं पीना चाहिये। देखो अन्य शास्त्रों ने भी इसे पाप माना है।

अधिक क्या कहूँ, बिना छाने पानी को कभी भी पीना और प्रयोग में नहीं लाना चाहिये इत्यादि उपदेश करते हुए चातुर्मास्य सुख शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ ।

वहां से बहुत दूर तक भाई बहिनें आपको पहुँचाने आईं । वहां से आप स्यालकोट पहुँचीं । इसी साल रावलपिण्डी में श्री सोमादेवी जी और श्री मोहनदेवी जी आदि ५ आर्याओं का चातुर्मास्य था । वे भी स्यालकोट में आपको आमिलीं । १० सतियां मिलकर स्यालकोट से पसरूर पधारीं । वहां से अमृतसर होती हुईं वे जालन्धर पहुँचीं और महासती जी के दर्शन किए ।

सम्वत् १९८२ का चातुर्मास्य जालन्धर छावनी में हुआ । उस समय सात सतिएँ वहां थीं । इस चातुर्मास्य में बहुत उपकार हुआ । अन्य धर्मावलम्बी भाई बहिनों पर भी जैनधर्म का बहुत असर हुआ । भाइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण की, रात्रि भोजन के त्याग और बिना छाने पानी सेवन न करने की प्रतिज्ञा स्वीकार की । व्याख्यान में काफी भीड़ होती थी, स्त्री पुरुष प्रतिदिन उपदेश सुनते थे । आपके उपदेश से जीवों का अत्यन्त बचाव हुआ ।

आपके प्रभाव से बहुत से जीवों को बोध प्राप्त हुआ। जिनमें जालन्धर छावनी की एक घटना, कि मुसलमान भाइयों ने ईद के दिन कुर्बानी से परहेज किया और निरामिष आहार ग्रहण किया इत्यादि का उल्लेख यहा किया जाता है।

जिस मुहल्ले में श्री सती जी विराजमान थीं, उस मुहल्लेसे बहुत सी मुसलमान देवियां भी उनके पास आतीं और उनसे उपदेश सुनती थीं। ईद आई और कुर्बानी का वर्णन होने लगा। यह देखकर श्री महासतीजी ने उन देवियों को अहिंसाधर्म का इस प्रकार उपदेश दिया और उसका ऐसा प्रभाव पडा कि उन देवियों ने कुर्बानी का विरोध किया और अपने घरवालों को बाध्य किया कि वे कुर्बानी न करें, प्रत्युत चावल का पलाव और शक्कर सेमिया आदि निरामिष आहार करें। वही बाटें। अत: ईद के दिवस ऐसा ही हुआ कि उस मुहल्ले के किसी भी मुसलमान भाई ने उस दिन कुर्बानी न की और सर्वत्र जालन्धर छावनी तथा शहर में इस बात की चर्चा होने लगी। सब पर इसका अच्छा प्रभाव पडा।

यहां सती जी ने मोक्षमार्ग पर उपदेश दिया जो यहां लेखबद्ध किया जाता है—

अनन्तकाल से जीव इस नश्वर संसार में भान्ति २ के दुःख तथा क्लेश सहन कर रहा है। जन्म मरण का चक्र कभी तिर्यञ्च, कभी वनस्पति, कभी पृथ्वी, कभी अग्नि, कभी जल, कभी नरक, कभी स्वर्ग के रूप में जीव को भिन्न २ प्रकार के दुःखों में डालता रहता है। कभी पुण्योदय से मनुष्यशरीर प्राप्त हो भी गया, तो जीव उसे अज्ञानवश यों ही नष्ट करके स्वात्मा को उसी जन्म मरण के दुःखों में डाल लेता है। कहां तक कहा जाय इस संसार में दुःख अपरिमित और असंख्य हैं। अनादि काल से प्रत्येक जीव अव्यवहार राशि अर्थात् सूक्ष्म नित्य निगोद में फंसा हुआ है। वहां श्वासोच्छ्वास की भी परतन्त्रता होने से अत्यन्त असह्य वेदना उठाता रहता है। सूक्ष्म निगोद में अत्यन्त दुःख भोगकर, जब जीव के कर्मदल कुछ न्यून हुए, तब वहांसे बादर (स्थूल) निगोद में आता है। वहां इच्छा के बिना कष्ट सहन करते हुए कुछ कर्मदल कम हुए, तब सूक्ष्म स्थावर अवस्था में उत्पन्न होता है।

उस अवस्था से क्रमश विकास को प्राप्त होते हुए बादर एकेन्द्रिय में आता है। वहा से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरेन्द्रिय अवस्था में होता हुआ, ज्ञानादि गुणों का विकास होने से पञ्चेन्द्रिय जाति में आता है। पुन' तिर्यंच, पशु, नारकीय, मनुष्य और देवगति में वार २ जन्म मरण भोगता हुआ जीव, इस ससार में परिभ्रमण करता रहता और दु ख भोगता रहता है।

जीव को वास्तविक सुख तो मोक्ष में है। जहा न तो जन्म है न मरण, न कोई रोग न शोक, न दु ख न क्लेश न यौवन न जरा, न भूख और प्यास, न राजा और प्रजा न धनवान और न निर्धन, छोटा वडा कोई नही है प्रत्युत अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख है। हर समय आनन्द ही आनन्द है। जहा वास्तविक स्वराज्य है। [यहा पोलीटिकल स्वराज्य का आशय नहीं वल्कि आध्यात्मिक स्वराज्य से है अर्थात स्वतन्त्र, अनन्त, अक्षय सुख और आनन्द की प्राप्ति] मुक्ति के सुखों के विषय में कहा जाता है कि यदि ससार के सर्व सुख और आनन्द एक ओर हों और मुक्ति के सुखों का अनन्तवा

भाग एक ओर हो तो तब भी मुक्ति का अनन्तवां भाग भारी और महत्वपूर्ण है। जिसमें इस प्रकार के सुख हों, उसको प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों न किया जाए? जिससे सर्वदा के लिए सुख तथा आनन्द की प्राप्ति हो।

श्री तीर्थंकर देव ने मोक्षप्राप्ति के लिए प्रतिपादन किया है- 'सम्यग्ज्ञानदर्शनचरित्राणि मोक्षमार्गः।' सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र ये तीनों रत्न मिल कर मोक्ष का मार्ग हैं। इन रत्न-त्रय की आराधना करता हुआ जीव वास्तविक सुख प्राप्त करने के योग्य होता है।

सम्यग्दर्शन को सम्यक्त्व भी कहते हैं। सच्चे देव, गुरु, और धर्म पर और श्रीवीतराग जिनेन्द्रदेव प्रतिपादित जीव-अजीव आदि तत्वों पर पूर्ण श्रद्धा रखने को सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सच्चे देव- देवता, मनुष्य, तिर्यञ्च आदि सबके पूजनीय, राग, द्वेषादि अष्टादश दूषण से विमुक्त, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, संसार समुद्र से तारने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान् सच्चे देव हैं।

सद्गुरु– सदुपदेश देने वाले, स्वय ससार सागर से तारने वाला, भव्य जीवों को मार्गदर्शन द्वारा तारने वाले पांच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तिके धारक, अलोभी, ब्यालीस दोष दूर कर निर्दोष भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले, मैत्री, प्रमोद मध्यस्थ और कारुण्य इन चार भावनाओं से हर समय सलग्न, ध्यान समाधि में प्रवृत्त और मोक्षमार्ग में उद्यम करने वाले, सच्चे गुरु हैं।

सद्धर्म–जो दुर्गतिमें पडे हुए जीवोंको उभारे उनका उद्धार करे और जो मोक्ष का साधन हो। धृति, क्षमा, दम आदि दश धर्म लक्षण पूर्ण हों , जिसमें त्रस और स्थावर जीवों पर दया का उपदेश हो, वही सच्चा धर्म कहलाता है। साधु धर्म और श्रावक धर्म के भेद से धर्म दो प्रकार का होता है। इन देवगुरु धर्मरूप त्रिरत्न की ठीक २ पहचान और तत्वार्थ श्रद्धान सम्यक्त्व है। इस का अर्थ सच्चाई और श्रद्धान से है । जो स्वाभाविक [मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के क्षयोपशम भाव होने से] अथवा गुरु आदि के उपदेश से प्राप्त होती है। जिस प्रकार कोई भूला-भटका पथिक, वन में स्वय ही इधर

उधर चक्कर काट कर मार्ग पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार जीव को भी क्षयोपशम भाव होने से स्वयं प्राप्त हो जाती है। शास्त्रों में कहा है कि जिस प्रकार पहाड़ी नदियों के प्रवाह में पाषाण का विषम खण्ड, पाषाणों से टकरा २ कर कालान्तर में गोलाकार और सुन्दर हो जाता है, उसी भान्ति अनादि काल से संसार समुद्र में भटकते हुए जब जीव की आयु कर्म के अतिरिक्त शेष सात कर्मों की स्थिति कुछ कम क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम रहती है तब प्राणी यथा प्रवृत्तिकरण से ग्रंथी के समीप पहुँचता है। पुनः अपूर्वकरण से कठोर तथा गम्भीर राग-द्वेष रूपी ग्रन्थी के छिद्ने अथवा कम होने पर तृतीय निवृत्तिकरण में प्रवेश करता है। अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त करता है। आशय यह है कि ग्रंथीको तोड़े विना सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता। इस पर एक उदाहरण दिया जाता है।

समुद्र में तीन मनुष्य पृथक् २ नावों में वैठकर एक साथ यात्रा कर रहे थे कि वे किसी भँवर में जा फसे। बड़े कष्ट से वहां से निकल कर कुछ आगे हुए तो पहाड़ जैसी उच्च और भयङ्कर लहरों से पाला पड़ा। अभी उनको

पार कर ही रहे थे कि सम्मुख उन्हें एक बड़े मगरमच्छ या किसी भयानक समुद्री जीव से सामना होगया। वे यात्री बडे सङ्कट में फसे। उन्हें जान के लाले तो पहले ही पडे थे, पर अब बचाव तो बिल्कुल कठिन प्रतीत होने लगा। उनमें से एक यात्री किश्तीको धकेलकर दूसरी ओर लेगया, वहा तीव्र और उच्च लहरों में होती हुई उसकी किश्ती भँवर में जा फसी। दूसरी किश्ती पर उस मगरमच्छ ने आक्रमण कर दिया और उस यात्री को आ दबोचा। तृतीय यात्री शस्त्र आदि से अपना बचाव करता हुआ, निर्भीक होकर तट पर पहुच गया अर्थात् यत्न और उत्साह से उसने अपना बचाव कर लिया। एक उदाहरण और लीजिये—

मालद्वीप से तीन यात्री, भारत महासागर में, लङ्का द्वीप के लिए पृथक् २ किश्तियों पर चले। समुद्र का मार्ग पार करते हुए, लङ्का के तट पर पहुचने ही को थे कि वायु प्रचण्ड हो गई। एक यात्री की किश्ती समुद्र की भेंट होगई। दूसरा यात्री तट के समीप पहुचा और किश्ती से उतर कर तट पर चढने लगा कि पाव फिसल गया और

धम से पानी में जा गिरा । प्रचण्ड लहरों ने उसको अपनी गोद में ले लिया । तीसरा यात्री शांतिपूर्वक तट पर पहुँच गया और अपने कार्य व्यवहार में प्रवृत्त होगया। अब इन उदाहरणों का इस सिद्धान्त से उपनय किया जाता है कि यह संसार एक समुद्र है । उच्च लहरों जैसी यहां ग्रन्थियां हैं। राग, द्वेष मगरमच्छ हैं। तट सम्यक्त्व है । पहिला यात्री संसारमें परिभ्रमण करने वाला संसारी जीव है । दूसरा संसार में भटकने वाला भव्य जीव है और तीसरा सम्यक्त्वी है। सम्यक्त्व के दीपक, व्यवहार, निश्चय, रोचक, कारक, औपशमिक, वेदक, क्षायिक आदि कई भेद हैं। जो शास्त्रों से जाने जा सकते हैं । केवल कुछ एक की संक्षिप्त परिभाषा यहां दी जाती है । विस्तार के लिए जैन ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिये ।

दीपक- दूसरों को धर्मोपदेश करना और उन्हें धर्म में स्थिर करना, परन्तु स्वयं न धर्माचरण करना और न श्रद्धा रखना ।

रोचक- जिसे जिनेश्वर देव प्रतिपादित धर्म की रुचि मन से हो चतुर्विध तीर्थ की भक्ति करने वाला और तन,

मन धन से धर्मोन्नति करने और कराने से जो सम्यक्त्व प्राप्त हो । चार तीर्थ निम्नलिखित हैं– साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका ।

कारक– जो साधु श्रावक के निर्मल व्रत पालने और धर्म करने कराने से सम्यक्त्व को प्राप्त हो ।

औपशमिक– अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय इन सातों मोहनीय कर्मों की प्रकृतियों को उपशम (अङ्गारों को राख से ढकने की तरह) करने से जो सम्यक्त्व प्राप्त हो ।

क्षयोपशमिक– उपर्युक्त सात प्रकृतियों में प्रथम चार को नितान्त नष्ट करने और शेष तीन को उपशम करने से जो सम्यक्त्व प्राप्त हो ।

क्षायिक– उपर्युक्त सातों प्रकृतियों को पूर्णतया नष्ट कर देने से जो सम्यक्त्व प्राप्त हो । यह प्राप्त होकर फिर लुप्त नहीं होता और तीसरे भव में तो अवश्य मोक्ष प्राप्त हो जाता हो जाता है । सम्यक्त्व के पाच लक्षण और आठ अङ्ग हैं ।

लक्षण– सम, सवेग, निर्वेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ।

सम– मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग आदि में समभाव रखना।

संवेग– सदा अनासक्ति (वैराग्य भाव) रखना।

निर्वेग– आरम्भ, परिग्रह आदि को पापकर्मों की जड़ और धर्मकार्य में बाधा स्वरूप जानना और उन्हें कम करने का प्रयत्न करना। इन्द्रिय विषयों में लिप्त न होना और उन्हें उत्तरोत्तर कम करना।

अनुकम्पा– दुःखी जीवों को देखकर, उन्हें दुःख से छुड़ाने और सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना।

आस्तिक्य– देव अशरीरी अजर अमर सिद्ध, भगवान्, जीवनमुक्त तीर्थंकर देव, गुरु, धर्म, लोक, पर-लोक, कर्म, कर्मकर्ता, कर्मफल आदि में श्रद्धा रखना।

अष्टांग निम्नलिखित हैं–

निश्शंकित, निकांक्षित, निर्विचिकित्सक, अमूढ़दर्शी, उपगुहन, स्थिरीकरण, वात्सल्य, प्रभावना।

१ निश्शंकित– सद्धर्म में शङ्का न करना।

२ निकांक्षित– पाखण्डियों तथा मिथ्यात्वियों के मत की इच्छा न करना।

३ निर्विचिकित्सक– धर्मफल में सन्देह न करना।

४ अमूढदर्शी– मिथ्यात्वियो का आदर, सन्मान देखकर अपना मन न भरमाना। अपनी श्रद्धा को स्थिर बनाए रखना।

५ उपगुहन– गुणी जनो को देखकर उनकी प्रशसा करना और स्वय उन जैसा बनने की इच्छा और प्रयत्न करना।

६ स्थिरीकरण– धर्म से गिरते हुए भाइयो को तत्व बतला कर, समझा-बुझाकर तथा उनका कोई कष्ट आदि नष्ट करके, उनको धर्म पर दृढ रखने का प्रयत्न करना अर्थात् उनको धर्म से गिरने न देना।

७ वात्सल्य– धर्मस्थ स्वधर्मियो से प्रेम रखना और उनकी यथाशक्ति सहायता वा सेवाभक्ति करना।

८ प्रभावना– सद्धर्म की उन्नति तथा प्रचार करना। सब पर समभाव रखना अर्थात् मित्र-शत्रु योग-वियोग में समान विचार रखना, राग-द्वेष से रहित होना, सच्चे देव गुरु, वा धर्म तत्वार्थ को यथातथ्य समझना और उन पर पूर्ण श्रद्धा करना सम्यक्त्व का आशय है। इसके बिना सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हो नहीं सकते। क्योकि धर्म का मूल सम्यक्त्व ही है।

नोट—इस लेख में जैन पारिभाषिक शब्द प्रायः अधिक आए हैं। अतः संक्षेप में उनका आशय लिखा जाता है।

कर्म— जैन सिद्धान्त में कर्म प्राकृतिक परमाणुओं को कहते हैं। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, कोई भी कार्य करते, मन, वचन और काया के योग से चुम्बक की भान्ति खिंचकर अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु जो कार्मण वर्गणा कहलाते हैं और जो सिवाय भगवान् केवल ज्ञानी के और किसी की दृष्टि में नहीं आते तथा हर समय जीव की शक्ति को ढांपे रखते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं। वे निम्नलिखित आठ प्रकार के होते हैं तथा १४८ प्रकृतियों वाले हैं।

ज्ञानावरणीय- वह कर्मदल जिसका ज्ञान पर आवरण हो। उसके पांच भेद हैं। यह ज्ञान को ढांप रखता है।

दर्शनावरणीय- वह कर्मदल जिसका दर्शन पर आवरण हो। जिससे जीव को सत्यासत्य का बोध न हो सके। यह नव प्रकार का होता है।

वेदनीय- जिससे सुख-दुःख का अनुभव हो, यह दो प्रकार का होता है।

मोहनीय- जो जीव को सद्धर्म पहिचानने और आच-

रण करने में बाधा डाले। यह २८ प्रकार का होता है।

आयु- जिससे आयु का परिमाण नियत होता है। यह चार प्रकार का होता है।

नाम- जिससे आकृति बने। यह ६३ प्रकार का है।

गोत्र- जिससे उच्च-नीच अवस्था प्राप्त हो, यह दो प्रकार का होता है।

अन्तराय- जिससे दान, लाभ, भोग, उपभोग, बल वीर्य में बाधा हो। यह पांच प्रकार का होता है।

आठ कर्मों की स्थिति- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय की न्यूनातिन्यून •अन्त-मुंहूर्त (दो घडी या ४८ मिन्ट के भीतर २) होती है, वेद-नीय कर्म की न्यूनातिन्यून बारह मुहूर्त, नाम तथा गोत्रकी न्यूनातिन्यून आठ मुहूर्त की है।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय की अधिकसे अधिक ३० क्रोडाक्रोड सागरोपम है। आयु की ३३ क्रोडाक्रोड सागरोपम, मोहनीय की ७० क्रोडा-क्रोड सागरोपम और नाम तथा गोत्र की २० क्रोडाक्रोड सागरोपम है।

इन कर्मों का विवेचन जैन शास्त्रों से देखा जा सकता है। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखा जा सकता ।

जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है । कर्मरूप परमाणुओं से जीव का निज गुण लक्षण आच्छादित है। जब यह कर्मरूप आवरण जीव से शनैः शनैः कम होजाता है तब जीव के ज्ञानादि गुण लक्षण क्रमशः प्रकट होते जाते हैं। और जब यह कर्मरूप आवरण प्राकृतिक आवरण जीव से सर्वथा पृथक् होजाता है तब जीव प्रकाशमान सर्वथा दोष रहित होकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनंतवीर्य अनन्तसुख सम्पन्न, अजर, अमर, अमूर्ति और शाश्वतस्वरूप होकर सच्चिदानन्द परमात्म स्वरूप होजाता है। यह बात मान्य है कि जैनधर्म में कर्म-फिलासफी (तत्वज्ञान) और कर्म सिद्धान्त का अच्छी तरह युक्तिपूर्वक पूर्णतया विवेचन है। जिज्ञासुओं को जैनशास्त्रों का स्वाध्याय कर, सच्चे सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

अनन्तानुबन्धी– क्रोध, मान, माया और लोभ ये मोहनीय कर्म की अठाईस प्रकृतियोंमें चार प्रमुख प्रकृतियां

हैं। इनके होते हुए सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकता। इनकी परिभाषायें यह हैं–

क्रोधादि का वह तीव्र वेग जो वर्षों तक शांत न हो। यथा पाषाण की रेखा, पाषाण का स्तम्भ, बांस की जड़, मजीठ का रंग। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त क्रोधादि के तीव्र वेगों में सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रवृत्तिकरण– जब आयु कर्म के अतिरिक्त, शेष सातों कर्मों की स्थिति कुछ कम क्रोडाक्रोड सागरोपम रहती है तब जिस विशेष विचार द्वारा जीव ग्रन्थी के समीप आता है, उस अध्यवसाय विशेष को यथा प्रवृत्तिकरण कहते हैं।

ग्रन्थी– जीव के साथ अनादिकाल से सम्यक्त्व में बाधा डालने वाले, गम्भीर, कर्कश, राग-द्वेषरूप मोहनीय कर्मदल को ग्रंथी कहते हैं।

अपूर्वकरण–यथाप्रवृत्तिकरण के अनन्तर जिस विशेष विचार से जीव ग्रंथीछेदन करता है।

निवृत्तिकरण– अपूर्वकरण के बाद, ग्रंथीछेदन करके सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद, नष्ट न होने वाले विचार विशेष को निवृतिकरण कहते हैं।

जालन्धर छावनीसे चातुर्मास्य समाप्ति पर ग्राम नगरों को पावन करती हुईं आप हांसी पधारीं । आपके साथ श्री १००८ श्री सोमादेवी जी, श्री १००८ धनदेवी जी, श्री हंसादेवी जी, श्री शीतलमती जी थीं । सम्वत् १६८३ का चातुर्मास्य हांसीमें हुआ। दोपहर को व्याख्यान होता था । काफी रौनक होती थी । तपस्या भी खूब हुई । चार मास तक धर्मध्यान की रौनक खूब रही । ज्ञान का डंका हर समय वजता रहता था । आप ज्ञानाभ्यास, जपादि में लगी रहती थीं । रात्रि में वहुत कम नींद लेती थीं । हर समय यही ख्याल रखती थीं जिस लिए साधुवेष धारण किया है, वह सिद्ध करना है। यहां से चातुर्मास्य समाप्त कर आप तुसाम पधारीं। यहां पर भी आपके पधारने से वहुत रौनक हुई । पव्लिक व्याख्यान भी हुए । जनता पर वड़ा असर पड़ा । अन्य धर्मावलम्वी भाई भी भारी संख्या में आते थे । प्रश्नोत्तर होते थे । कई वैष्णव भाई वहिनों की जैनधर्म पर श्रद्धा हुई ।

एकवार आपकी चेलियां आहारके लिये एक तेरापंथी श्रावक के यहां पहुँची और उन्होंने वड़े भक्तिभावसे भोजन दिया । दूसरे दिन उनको पता लगा कि ये तो वाईस

सम्प्रदाय की आर्याएँ आहार ले गई हैं तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। शोक करते हुए कहने लगे कि हमें मालूम होता, तो कभी भी भोजन न देते। पर अब क्या हो सकता है, रेत में घी डाल दिया। अन्य भी ऐसी अनेक बातें हुईं क्योंकि उनका विश्वास है कि सिवाय अपने साधुओं के अन्यों को आहार देने से १८ पाप लगते हैं। अन्य धर्म के भूखे को रोटी पैसा देने और अनाथ की सहायता करनेमें भी वे पाप मानते हैं। और तो और किसी मरते को बचाना भीउनकी दृष्टिमें पाप है। सतीजी ने इन भाइयोंसे बातचीत की और उन्हें समझाया। भगवान् के मार्ग का भेद बतलाया। सुज्ञ जनो! विचार करना कैसी कुश्रद्धा है। अन्य भी बहुत सी बातों का भगवान के मार्गसे अन्तर है।

तोशाम से चलकर आप भिवानी पहुँचीं। वहा भी धर्मकार्य खूब हुआ। सेवा-समिति वालो ने आपके दो व्याख्यान करवाए। वहा से रोहतक होती हुई देहली पधारीं। इस साल आर्या श्री मोहनदेवी जी, आर्या श्री विमलमती जी, आर्या श्री रत्नदेवी जी, आर्या श्री गोपी जी का चातुर्मास्य देहली हुआ था। ये सब आर्याएँ बड़े २ खानदान घरानों से हैं। आपके उपदेश से अनेक ==

समय रहती थीं। बाइयों ने विनति की कि आपके चातुर्मास्य की यादगार स्थापित करनी है। आर्या श्री मोहन देवी जी ने कहा कि साधु की यादगार क्या? पर वे न मानीं और बोलीं, महाराज! आपकी यादगार में एक मकान बनाना है। श्री मोहनदेवी जी ने कहा, यदि अवश्य कुछ बनवाना है तो जैन कन्या पाठशाला खुलवा दो; जिससे समाज को कुछ लाभ भी हो। आपकी यह बात सबके मन भाई। सबने चन्दा लिखने पर जोर दिया। इस पर उक्त सती जी ने कहा कि बहिनो! यह बात तो ठीक है, परन्तु मेरा विचार है कि जितना चन्दा देना हो, वह दे डालना चाहिये। क्योंकि चन्दे का काम वर्ष दो वर्ष ही चल सकता है और स्थायी फण्ड का काम हमेशा। चातुर्मास्य के अब थोड़े से दिन बाकी हैं। काम बड़ा भारी है। चातुर्मास्य के समाप्त होने पर आशा है कि मेरी गुरुणी धर्माचार्या श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी महाराज यहां पधारेंगी। उनके आने पर पाठशाला स्थापित करें तो उत्तम होगा। यह राय सबको पसन्द आई।

चातुर्मास्य के पश्चात् मोहनदेवी जी महाराज सदर पधारीं। उनके जाने के बाद श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां

जी महाराज जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं देहली शहर पहुँचीं। बहुत रौनक हुई और स्थानक वासी भाई बहिनों ने लगभग आठ हजार रुपए पाठशाला के लिए एकत्रित कर दिये। एक बाई ने एक हजार रुपया और कइयों ने ५, ५ सौ रुपये दिये। अन्यों ने अपनी २ शक्ति के अनुसार जो मन पड़ा दिया। भाइयों ने सती जी की जय २ बुलाते, शुभ मुहूर्त में स्थानकवासी जैन कन्या पाठशाला स्थापित की। यह उपकार श्री श्री १००८ श्री द्रोपदाजी का ही है। इसके बाद कई तरह के उपकार कार्य करके आपने यमुना पार देश की ओर विहार किया।

आपका १९८४ का चातुर्मास्य रामनोली जिला मेरठ में हुआ। आपने आर्या श्री मोहनदेई जी, आर्या श्री विमलवती जी, आर्या श्री रोशनमती जी, आर्या श्री जैनमती जी, इन चार अन्य आर्याओं के साथ चातुर्मास्य किया। दोपहर को ढाई तीन घण्टे व्याख्यान होता था। यहां समाज की जैनधर्म में बहुत श्रद्धा है। श्रावक उद्यमी भी काफी हैं। यहां सभा भी होती थी। आपके उपदेश से रीति रिवाजों में कई सुधार हुए। तपस्याकी पचरंगी, अठाइएँ दया, प्रोषद सामायिक आदि २ का प्रचार

हुआ। आसपास के गांव वालों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

भाई कहते थे कि हमारे भाग्य धन्य हैं, जो ये सतिएँ हमारे क्षेत्र में पधारी हैं। चौमासा समाप्त कर आप बड़ौत गईं। पुनः फिर विनौली में आईं। यहां बहुत उपदेश हुए। यहां से आपने मेरठकी ओर विहार किया। रास्ते में एक गांव में जहां केवल थोड़े से घर जैनियों के थे और वे सबके सब कृषक थे। वहां आपके उपदेश से, एक धनाढ्य अजैन नम्बरदार ने मांस त्याग की प्रतिज्ञा की तथा अपने परिवार से भी यह प्रतिज्ञा करवाई और प्रण किया कि अपने गांव वालों के हां विवाह आदि में इसका इस्तेमाल न होने दूँगा। मेरठ पधारने पर आपने कई व्याख्यान दिए। कई बाई भाइयों की जैनधर्म में श्रद्धा हुई।

कुछ दिन वहां रह कर आगे पधारीं और लुहारे पहुँचीं। वहां भी उपदेश हुआ कई कुरूढ़िएँ (बुरी रसमें) बन्द करवाईं। वहां से खट्टा ग्राम होती हुईं पुनः देहली लौट आईं। वहां ला० शेरसिंहजी दादरीवाले और अन्य भाई आपकी सेवा में पहुँचे और प्रार्थना की कि महाराज! लाला शेरसिंह की छोटी भरजाई गेंदीबाई के वैराग्य पूर्णभाव हैं। वह संसार में रहना नहीं चाहती। हमने

बहुतेरा समझाया पर सब व्यर्थ वह आपकी शिष्या बन कर आत्म-कल्याण करना चाहती है। अत प्रार्थना है कि हमारी विनती को स्वीकार कर आप दादरी पधारें।

सती जी-भाई साहिब ! आपकी विनती मुझ को क्यों न मजूर होगी ? यह तो बडा शुभ अवसर है, जो एक भले कुल की बहु-बेटी इस मार्ग के लिए उद्यत हुई है। इस धर्म में बडी २ साध्वी सतियाँ हो चुकी हैं। राज घरानों की कई देविया उच्च कोटि के तप सयमसे सत्या-नुभूति को पा चुकी है। जो दिन आप नियत करेंगे ? हम उस दिन दीक्षा पाठ पढा देंगे। दिन नियत करके हमें सूचित करदें। भाई शेरसिंह जी ने इस बात को स्वीकार किया। दिल्ली से चलकर सती श्री श्री १००८ श्री द्रौपदा जी, श्री श्री १००८ धनदेई जी तथा अन्य अनेक छोटी आर्याओं के साथ रोहतक होती हुई दादरी पधारीं। लोगों ने बडे उत्साह और प्रेमसे आपका स्वागत किया। आप दादरी में व्याख्यान करती थीं। दीक्षा महोत्सव की चिट्ठी शहर २ भेज दी गई। मगल गीत गाए जाने लगे। नियत तिथि पर विधिपूर्वक दीक्षा महोत्सव हुआ। धन्य २ की ध्वनि गूज रही थी। सब खर्च ला० शेरसिंह

जी ने किया। वैरागिन दानादि दे रही थी। दीक्षा के जलूस के समान आरहे थे। हर प्रकार की सामग्री सज रही थी। मेंहदी का उत्सव जोर शोर से मनाया गया। दीक्षा का समय आने पर जुड़ाउ जेवरों से सजी हुई वैरागिन पालकी में बैठी हुई थी। बाजा आदि सब सामग्री से सुसज्जित जलूस अपनी अनोखी शान दिखा रहा था। बाजारों में जलूस होता हुआ सुसज्जित मण्डप में पहुँचा। जय २ की ध्वनि के साथ वैरागिन सती जी के चरणों में लाई गई। वह समय द्रष्टव्य था। जैनधर्म का झण्डा लहरा रहा था। वैरागिन ने विधिपूर्वक नमस्कार किया और आभूषणादि उतार कर साधु वेष धारण किया।

परिवार वाले और सब भाई आँखों से आंसू बहा रहे थे और कह रहे थे कि धन्य है इस देवी को जो जैन साधु धर्म ग्रहण कर रही है और ममत्व भाव छोड़कर आत्म-कल्याण के सच्चे मार्ग पर चलना चाहती है।

वैरागिन बाई को आपने विधिपूर्वक दीक्षा का पाठ पढ़ाया और श्री धनदेवी जी के सुपुर्द कर दिया। श्री शीतलमती जी की शिष्या बनाकर केशों को थाली में डाल दिया। रुपयों की बौछार हुई। उसी समय एक बाई

ने अपनी पौत्री आपकी भेंट की और कहा कि महाराज हम आपको एक और शिष्या दे रहे हैं, इन्हें गेंदीबाई की शिष्या बना दीजियेगा। सुज्ञ-जनो ! आप यह न सोचें कि लोग अपने बच्चों को कैसे साधु बना देते हैं ? भाइयो ! यह आदर्श जैनधर्म का ही है। सच्चे श्रद्धालु ही ऐसा कर सकते हैं। फकीरी हर धर्म में लिखी है। राजपुत्र भर्तृहरि जैसे राजाओं ने घर त्यागकर वनों का रास्ता पकड़ा है।

आप अपनी सब शिष्याओं के साथ नवदीक्षिता आर्या सहित प्रस्थान करने को उद्यत हुईं। कुछ दिनों बाद रोहतक में पधारीं।

सम्वत् १९८५ का चातुर्मास्य रोहतक में हुआ। इस चातुर्मास्य में धर्मध्यान बहुत हुआ। आपने स्त्रियों में ज्ञान का विशेष प्रचार किया। यहाँ एक जैन कन्या पाठशाला भी खुलवाई। ला० नानकचन्द की धर्मपत्नी को वैराग्य हुआ। यहाँ से आप जड़ूले पहुँचीं। इस क्षेत्र में भाइयों में परस्पर विरोध था। सती जी ने उपदेश द्वारा उसे शान्त किया। सतीजी की आज्ञा शिरोधार्य कर सब भाई एकत्र हो गए। यह आपका महान् उपकार था।

आप देहली होती हुई पुनः यमुना पार गईं। इन क्षेत्रों में खूब उपकार हुआ। लाला नानकचन्द की धर्म-पत्नी का दीक्षा मुहूर्त आषाढ़ सुदी को निकाला गया। आपसे विनती कीगई। अतः आपको पुनः देहली लौटना पड़ा। उस समय आप छपरौली थीं। दीक्षा बड़े समारोह पूर्वक हुई। जौहरी बाज़ार से जलूस निकाला गया। वैरा-गिन लाला मांगीलाल चुन्नीलाल के मकान में आपके चरणों में लाई गयी, यथाविधि दीक्षा-पाठ पढ़ाया गया। जय २ की ध्वनि से स्थानक गूंज उठा और श्री धनदेवी जी महाराज द्वारा ज्ञान संयमादि पर शिक्षा देकर मनोहर मती जी की शिष्या बना दिया गया।

सम्वत् १९८६ का चातुर्मास्य देहली शहर में हुआ। इस चातुर्मास्य में आपने अपनी सर्व शिष्याओं को आपने पास ही रक्खा और उन्हें ज्ञानदान दिया। आपकी वैराग्य-मय वाणी शिष्याओं को अत्यन्त लाभदायक हुई। धर्म-ध्यान का विशेष प्रचार हुआ।

देहली में एक कसाई का अपने नीच कर्म से सर्वथा परहेज़—

आप एकबार देहली लाट के समीप विराजमान थीं।

आपके उपदेश और व्याख्यान होरहे थे। श्रोता महानुभाव सुन २ कर लाभ उठा रहे थे। अहिंसा, दया, सहानुभूति, परोपकार इत्यादि व्याख्यानों के मुख्य विषय थे । दया, सहानुभूति और अहिंसा धर्म पर व्याख्यान सुनकर एक कसाई के दिलपर कुछ ऐसा प्रभाव पडा कि उसने सर्वदा के लिये इस निन्दक कर्म का त्याग कर दिया।

सम्वत् १९८७ का चातुर्मास्य देहली सदर वाजार में हुआ। श्री सोमादेवी जी महाराज को अचानक सदर वाजार में, मोटर से गहरी चोट लग गई थी। धर्मध्यान समय के मुताविक हुआ। यह चातुर्मास्य पूर्ण होने पर चिराग देहली गई और दादरीवाली लडकी जगदीशमती जी को दीक्षा दी और श्री सुदर्शनामती जी की शिष्या वनाया। चिराग देहलीवाले भाइयों ने भी अवसर पर धर्मप्रेम का अच्छा परिचय दिया।

यहा से विहार करके आप हासी पहुँचीं। यहा इस समय आर्या मोहनदेवी जी, विमलमती जी इत्यादि आपकी ५ शिष्याएँ विराजमान थीं। विमलमती जी को कुछ तकलीफ थी। उनको देखकर आपको वहुत दुःख हुआ। आप इस आर्या को शास्त्र सुनातीं और वैराग्य का

उपदेश देतीं। आर्या जी स्वयं भी बड़ी समझदार, चतुर और विनयवती थीं। नित्यकर्म बिना किये जल तक न ग्रहण करती थीं। यहां पर देहलीवालों का आना जाना बहुत रहता था। श्री विमलमती जी ने शुभ परिणामों से आलोचना कर संथारा किया और समाधि-मरणको प्राप्त कर इस लोक को त्यागकर स्वर्गधाम को अपनाया। मृत्यु समय उन्होंने अपनी आचार्या श्री सती द्रौपदां जी से कहा कि आपने मुझ पर बहुत उपकार किया है। गुण वा ज्ञान भी मुझे काफी दिया। परन्तु मैं आपकी सेवा न कर सकी हूं। देहली और हांसी वालों को इससे अतीव दुःख हुआ। आपके अन्तिम संस्कार पर आस पास के बहुत लोग आए। कई बहुमूल्य दुशाले आपकी अर्थी पर डाले गये थे।

सती जी वहां से चलने ही को थीं कि पूज्य श्री श्री १००८ श्री ज्वाहरलाल जी महाराज हांसी पधारे। दर्श-नार्थ आप वहीं ठहर गईं। आपने महाराज जी से अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर किए। पश्चात् उनके दर्शनों का लाभ उठाकर हिसार गईं। वहां लोगों ने आपका व्याख्यान सुना और प्रार्थना की कि सती जी का चातुर्मास्य यहीं

होना चाहिये । जिससे जैनधर्म की उन्नति हो । ये वही आर्याजी हैं, जिनका पब्लिक व्याख्यान हासी में हुआ था और मछली पकडना बंद होगया था। भाइयोंने आग्रहभरी विनती की और आपने सम्वत् १९८८ का चातुर्मास्य हिसार में किया । इस चातुर्मास्यमें स्थानकवासी धर्म का बहुत प्रचार हुआ। एक भाई ने प्रश्न किया-सतीजी आप स्नान नहीं करतीं ? आपने तत्काल उत्तर दिया, भाई जी ! आप यह बताएँ क्या साधु भी कभी मला हुआ है। जिसने कि सांसारिक क्रियाओंको त्याग दिया है ? जैनधर्ममें साधुका स्नान, ध्यान और तप ही है। श्रीकृष्णजी ने भी कहा है-जप स्नान तप स्नान स्नानमिन्द्रियनिग्रह ।

सर्वभूतदया स्नान सर्वस्नान निर्मितम् ॥

भावार्थ- हे पार्थ ! इस आत्मा को जप से अर्थात परमात्मा के स्मरण से, तपस्या से और इन्द्रियनिग्रह से पवित्र करना चाहिय। सर्व प्राणियों पर दया करना ही वास्तविक स्नान है। हम मैले भी तो नहीं रहते। हमारा जो स्नान है हम उसी में मग्न रहते हैं ।

चातुर्मास्य समाप्तकर आप जालन्धर छावनी पधारीं। वहां से जालन्धर शहर आईं। यहां महासती श्री प्रवर्तिनी

जी के दर्शनोंका लाभ उठाया और उनके पास ही रहीं। आपकी गूढ धारणा और शास्त्रज्ञानको देखकर श्रीमहासती जी का दिल बहुत प्रसन्न होता था। सम्वत् १९८९ का आपका चातुर्मास्य जालन्धर छावनी में हुआ। धर्मध्यान पूर्वक चातुर्मास्य समाप्त हुआ। आप यहां से चलकर लुधियाना होती हुई अम्बाला पहुँचीं। इस स्थान पर श्री मोहनदेवीजी अपनी शिष्याओं को लेकर आपके श्री चरणों में उपस्थित हुईं। छोटी आर्या श्री रुक्मणी देवी भी साथ थीं। सब ने आपके दर्शनों का लाभ उठाया। आपने मोहनदेवी जी से आर्या श्री रुक्मणी देवी जी के ज्ञाना-भ्यास के सम्बन्ध में पूछा और फरमाया धन्य हैं यह। ओह! इस अवस्था में यह कितनी विनयवती और विदुषी है। वहाँ से चलकर कर्नाल होती हुई छपरौली पधारीं।

सम्वत् १९९० का चातुर्मास्य बड़ौत जिला मेरठ में हुआ। चातुर्मास्य में व्याख्यान और उपदेश खूब हुए। यहां भी एक कन्या पाठशाला स्थापित हुई। यहां का चातुर्मास्य सम्पूर्ण कर ग्रामानुग्राम विचरती हुईं लुधियाना पहुंचीं। वहां से श्री १००८ श्री प्रवर्तिणी जी महाराज के दर्शनों के लिये जालन्धर शहरकी ओर विहार किया और

श्री महासती श्री प्रवर्तिणीजी के दर्शन किए। यहां से श्री १००८श्री धनदेवीजी ने अपनी शिष्याओं सहित अमृतसर की ओर विहार किया। श्री श्री१००८श्री सोमादेवी जी महाराजने ३ आर्याओं के साथ रायकोटकी ओर प्रस्थान किया। आर्या श्री मोहनदेवीजी वा और छोटी आर्याओं के साथ आप होश्यारपुर को सुशोभित करने के लिए पधारीं।

आपका सम्वत् १९९१ का चातुर्मास्य होश्यारपुर में हुआ। इस चातुर्मास्य में श्री रुक्मणीजी का स्वर्गवास होगया। चोट तो बहुत गहरी थी परन्तु आपने वैराग्य की प्रबलता से शान्तिपूर्वक सहन की। व्याख्यान की अमृतवर्षा अविरत रूप से होती थी। चातुर्मास्य समाप्त होते ही यहा से चलकर आप जालन्धर लौटीं। महासती श्री प्रवर्तिणी जी के दर्शन किये। इधर श्री धनदेवी जी भी अमृतसर से लौटकर जालन्धर छावनी आईं। यहा से आपने धनदेवी जी और छोटी आर्याओं को साथ लेकर फगवाडा की ओर प्रस्थान किया। मोहनदेवी जी को आपका यह अन्तिम दर्शन था। मालूम नहीं था कि अब फिर मिलना नहीं होगा। आपने मोहनदेवी जी से कहा, 'इच्छा होती है कि तुम्हारे साथ जम्मू चातुर्मास्य में रहूं।

अच्छा कुछ दिनोंके बाद शीघ्र ही तुमसे फिर मिलूंगी। आप फगवाड़ेसे लुधियाना, मालेरकोटला में होती हुई पटियाला पधारीं। जम्मू न पहुंच सकीं। अम्बाला, पटियाला तथा अन्य भी कई क्षेत्रों के श्रावकों ने चौमासे के लिये विनती की।

अम्बाले वाले भाईयोंके बहुत आग्रह करने पर सम्वत् १९९२ का चातुर्मास्य अम्बाला शहरमें हुआ। इस चातुर्मास्यमें आपके साथ श्री श्री १००८ श्री हंसादेवी जी, श्री श्री १००८ श्री शीतलमती जी, श्री श्री १००८ श्री सुदर्शन मती जी और श्री फूलमती जी आर्याएं थीं। इस चातुर्मास्य में बाइयों में बड़ा उत्साह हुआ। आपके सदुपदेशों का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उपकार कार्य बहुत हुआ। आपकी मुख्य शिष्याएं पास न थीं, अतः मृत्यु को अच्छा समय हाथ आया और उसने भाद्रपद सुदी ८ को अपना एकाधिपत्य कर, रातों रात अपना कार्य कर लिया।

उन दिनों उनके वैराग्य-भाव में अतीव प्रबलता थी। आपने अपने ज्ञानाभ्यास को इतना प्रबल कर लिया था कि रात्रि को भी नींद लेना बिल्कुल त्याग दिया था। आपका हर समय भगवान्में ध्यान लगा रहता था। उसी ध्यानमें आप स्वर्गधाम सिधारीं। और आलोचना निंदना

करके समाधिमरण प्राप्त किया। म-धुररत-को इतनी कष्ट-दायक वेदनामें भी आपने कुछ परवाह नहीं की और न किसी शिष्यापर ममत्व किया। जहा आपके सासारिक कुटुम्बी थे, जहा जन्म, विवाह हुआ था अन्तिम सस्कार भी वहीं हुआ।

धन्य आप! धन्य अम्वाला की भूमि! जहां ऐसी उत्तम आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। आप तो अपना कार्य समाप्त कर शाति से स्वर्गलोक चलीं गई। परन्तु आपकी शिष्याओं और जैन समुदाय को आपके वियोग से अपार दु ख हुआ। हम लोग आपके उपकार लिखने में असमर्थ हैं। अम्वाले वालों को भी यह दृश्य असह्य था। वे इस क्षेत्र में उनका स्वर्गवास नहीं देख सकते थे। परन्तु क्या करते? लाचार थे। कालके सम्मुख किसी की भी पेश नहीं चलती।

सती जी का सितारा वडा तेजमय था। आपने स्वर्गवास होने से एक दो दिन पूर्व अम्वाला में भाइयों से कहा था कि भाइयो! अपनी समाज में सम्प नजर नहीं आता। अत आपको मिलाप कर लेना चाहिये। आप अचानक ही रात्रि को बीमार होगई और सुबह प्रथम प्रहर में स्वर्गलोक को चल दीं। भाइयों ने आपका विमान उठाने से पूर्व ही विरादरी में सघटन किया। भला सती

जी की आज्ञा को कौन टालता ? सब भाई एक होगए।

आपकी पुण्य प्रकृतिका प्रभाव अवश्यमेव पड़ता था। क्या २ लिखा जाय? आपकी शान्तमूर्ति दूसरे पर बिना प्रभाव डाले न रहती। उस समय आपकी बड़ी शिष्या श्री श्री १००८श्री सोमादेवी जी महाराज तथा विदुषी श्री श्री १००८श्री धनदेवीजी महाराज ठाने ५ गुजरवाल में विराज-मान थीं। और श्री श्री १००८श्री मोहनदेवी जी महाराज जम्मूमें विराजमान थीं। इनको तथा अन्य छोटी आर्याओं को अचानक स्वर्गवास का समाचार प्राप्त होने से बहुत दुःख हुआ। गुरुजनों का वियोग मानों अनभ्र वज्राघात होता है। अतः जितना दुःख आपकी शिष्याओंको हुआ उसका कोई अनुभव नहीं कर सकता, लोहे की लेखनी में तो लिखने की सामर्थ्य नहीं।

यह समाचार जब जम्मू बिरादरीको मिला तो स्थानक में आकर शोक मनाया गया। समस्त बिरादरीने हड़ताल की और सबने अपने २ मुख से एक ही स्वर में कहा कि 'आज जैन समाज का अमूल्य रत्न खो गया। हमारी आन्तरिक भावना है कि स्वर्गवासिनी श्री श्री १००८ श्री द्रौपदां जी की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।'

उस समय सब लोग उनकी आकस्मिक मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए, अश्रुधाराओं से उनकी जन्मभूमिको प्लावित कर रहे थे और मुक्तकठसे उनकी प्रशसाकर रहे थे। चारों ओर नारे लग रहे थे,दूर २ से प्रेमी भाई आरहे थे, जगह २ से तार आरहे थे कि हम भी इस अवसरपर उपस्थित होंगे,उनके पवित्र मुखकमलकेदर्शनोंकी चाह सबको थी।

बडी सजधज के साथ, बाजारोंसे होता हुआ विमान का जलूस स्थान पर पहुँचा। विमान पर अनेकों ही दुशाले पडे थे। चन्दन की चितामें अग्नि प्रज्वलित होने पर चारों ओर सुगन्धि फैल गई। लोग आश्चर्यचकित थे। वे सोच रहे थे कि न मालूम क्यों चित्त पर उदासीनता छारही है। एक अपूर्व दृश्य नेत्रोंके सन्मुख आरहा है। ससार अनित्य है और यह सब कुछ निरर्थक है। बारबार ऐसे विचार मन में उठ रहे थे। मोह,माया, ईर्ष्या,द्वेषादि इस सुगन्ध से अपने आप भागे जा रहे थे।

दैव ऐसे महापुरुषोंको थोडे ही दिनों केलिये ससारमें स्थान देता है। यथार्थमें देखा जाय तो उनके स्वर्गधाम विराजमान होते हुए भी हमारे सम्मुख उनकी शाँत प्रकृति स्थिरता मे विराजमान है। उनके सदुपदेश स्वर्णाक्षि-रों में नेत्रों के सामने हैं।

श्री श्री १००८ श्री महासती श्री द्रौपदां जी महाराज की शिष्याओं और शिष्यानुशिष्याओं का परिचय ।

१. श्री सोमादेवी जी— आपका जन्म अमृतसर निवासी लाला ईश्वरदास जी ओसवाल के घर हुआ था । आपका विवाह स्यालकोट मे लाला पंजु शाह के सुपुत्र लाला पन्नाशाह के साथ हुआ । किन्तु बाल्यावस्था मे ही विधवा हो गई । आपके पिताजी ने जो कि बड़े पवित्र, धर्मात्मा और भद्र पुरुष थे; आपको धर्म का उपदेश देकर संसार की असारता का वास्तविक चित्र दिखाया आप उनकी शिक्षा के प्रभाव से सब कुछ छोड़कर दीक्षा लेने को उद्यत हो गई । श्री प्रवर्तिणी जी महाराज को गुजरांवाला से बुलवा कर उनके द्वारा पौष वदी सम्वत् १९६२ से आपको श्री द्रौपदां जी महाराज की शिष्या बनाया गया । आपके पिताजी भी श्री श्री १००८ श्रीमज्जैनाचार्य परमपूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के शिष्यानुशिष्य हो गए । आप अत्यन्त वैरागिनी, त्यागिनी और आदर्श तपस्विनी हैं ।

श्री श्री पण्डिता श्री धनदेवी जी महाराज— आपका जन्म अमृतसर में लाला पिशोरीमल जी ओसवाल के घर हुआ था । आपकी माता जी का नाम प्रेमदेवी था। आपका विवाह स्यालकोट के प्रसिद्ध ला० भोलूशाहजी के सुपुत्र ला० पन्नालालजी से सम्वत १९५६ मे हुआ था । सम्वत १९५८ मे आपके पति का स्वर्गवास हो गया । आपको संसार असार ज्ञात होने लगा । हरसमय आप ज्ञान ध्यान मे लगी रहती । सम्वत १९६६ मे प्रवर्तिणीजी और श्रीद्रौपदां

जी के उपदेश से आपको ससार से विरक्त हो दीक्षा लेने का भाव उत्पन्न हुआ। सम्वत १९६७ चैत्रवदी पचमी वीरवार को होशियारपुर में आपका दीक्षा महोत्सव बडी धूमधाम मे हुआ। आप श्री द्रौपदा जी की शिष्या हुईं। आप बहुत समझदार और विदुषी हैं। आपका उपदेश बड़ा प्रभावशाली और रोचक होता है। स्त्री जाति की उन्नति का आपको बहुत ध्यान है। आप सद्धर्म के प्रचार में सदा प्रयत्नशील रहती हैं। ज्ञान की मानों आप भण्डार हैं। आपने तीस सूत्रों का अभ्यास किया है। बहुत से थोकड़े आपको कण्ठस्थ हैं। जैनसघ में आपको उच्च स्थान प्राप्त है। और कोमल हृदय और शात स्वभाव की साध्वी हैं। एक योग्य गुरु की शिष्या कैसी होनी चाहिये, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आपके उपदेश रोचक और प्रभावशाली होते हैं।

श्री श्री विदुषी श्री मोहनदेवी जी— आपका जन्म देहली के सुप्रसिद्ध लाला कल्लूमल जी जौहरी की धर्मपत्नी श्रीमती गेंदो जी की कुक्षि से, कार्तिक वदि १० सम्वत १९२७ को हुआ था। पालन-पोषण के साथ ही साथ आपकी शिक्षा का भी सुप्रबन्ध किया गया। आपका विवाह सम्वत् १९४६ म ला० खुशालचन्द जी जौहरी के सुपुत्र ला० जगन्नाथ जी स हुआ। उनके स्वर्गवास होने पर सम्वत १९५२ में आप विधवा हो गईं। और धार्मिक शिक्षा, स्वाध्याय और ज्ञानाध्यान में जीवन व्यतीत करने लगीं।

इसी समय श्रीमज्जैनाचार्या श्री श्री १००८ श्री प्रवर्तिनी महासती पार्वती जी महाराज, श्री श्री १००८ श्री भगवानदेवी जी महाराज, श्री राजमती जी और श्री श्री १००८ श्री द्रौपदा जी

अन्य आर्याओंजी के साथ देहली पधारीं। उनके सदुपदेशका आप पर विशेष प्रभाव हुआ। जैन साध्वी बनने का दृढ़ संकल्प उत्पन्न होगया। पौष वदि सम्वत १९७० को देहलीमें आपका दीक्षा महोत्सव समारोह-पूर्वक हुआ। आप श्रीद्रौपदां जी को शिष्या हुई।

आपने ३० सूत्र अध्ययन किए हैं। जैन समाज में आप आदर्श साध्वी हैं। आप अतिविदुषी और विद्यासम्पन्न हैं। आपके उपदेश और व्याख्यान मे विशेष रस और प्रभाव होता है। गम्भीर विषयों को सरलता से समझाने मे आप विशेष दक्ष हैं। आपके हृदय मे जातिप्रेम अधिक है। समाज की कुरूढ़ियों को दूर करने में आप सदा प्रयत्नशील रहती हैं। आप शांत स्वरूपा और विचारशीला हैं। आप पर जैन समाज को अतिगौरव है।

४. श्री पद्मावती जी— आप पटियाला के उच्च क्षत्रिय घराने की कन्या थीं। श्री द्रौपदां जी महाराज और धनदेवी जी महाराज के सदुपदेशों से आपको वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। १८ वर्ष की अवस्था मे फाल्गुन वदि सप्तमी सम्वत् १९७२ को होश्यारपुर मे आपका दीक्षा महोत्सव हुआ। आप श्री धनदेवी जी महाराज की शिष्या बनाई गई। आप बहुत शांत और विनयवती आदर्श आर्या थीं। आपकी वाणी हर एक को शांत करने की क्षमता रखती थीं। कष्ट होने पर धैर्य का साथ न छोड़तीं। आशा थी कि आप जैनधर्मका खूब प्रचार करेंगी। पर शोक! दीक्षा के ४ मास बाद ही बीमारीने आपको अपना ग्रास बनालिया और आवश्या में आलोचना निन्दा करके समाधि-मरण को प्राप्त हुई। शोक! केवल २०, २१ वर्ष की अल्पावस्था मे ही आप स्वर्ग सिधार गई।

५ श्री हसादेवी जी— आप हैदराबाद दक्षिण के लाला शिवसहायमल जी जौहरी की सुपुत्री हैं। आपका जन्म सम्वत् १९४० में हुआ था। देहली में लाला बुधसिंह जी जौहरी के सुपुत्र ला० हीरालाल जी से आपका विवाह सम्वत् १९५१ में हुआ था। पति के स्वर्गवास होने पर आप धर्मध्यान में मग्न रहने लगीं। वैशाख सुदि सप्तमी सम्वत् १९७७ को आपका दीक्षा महोत्सव देहलीमें हुआ। यह उत्सव आपके देवर ला० गोकुलचन्दजी जौहरी ने किया था। आपने २५ सूत्रों का अभ्यास किया है। आप समझदार आर्या हैं। आशा है कि आप जैनधर्म का प्रचार खूब करेंगी। आप श्री १००८ श्री द्रौपदा जी महाराज की शिष्या हैं।

६ श्री विमलमती जी— आप देहली के लाला जीतमल जी जौहरी की सुपुत्री थीं। दशवर्ष की अवस्था में आपका विवाह देहली के ला० खूबचन्द जी के सुपुत्र ला० जीतमल जी के साथ हुआ था। कुछ समय पश्चात् ला० जीतमल जी का स्वर्गवास हो गया और आपकी रुचि धर्म कर्म और ज्ञान ध्यान की ओर प्रवृत्त होगई। एक दिन आप रोहतक में श्री श्री १००८ श्री द्रौपदा जी के दर्शनार्थ गईं। वहां श्री मोहनदेवी जी के सदुपदेश से आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ और दीक्षित होने के भाव उत्पन्न हुए। घर वालों ने बहुतेरा समझाया, आपके विचारों को अटल देखकर ज्येष्ठ सुदि सम्वत् १९७७ को अतिसमारोह से आपका दीक्षा महोत्सव आपके ज्येष्ठ जी ने किया। आप श्री मोहनदेवी जी की शिष्या हुईं। आपकी विद्याभ्यासमें बहुत रुचि थी। व्याख्यान शैली मनोहर थी। जैन शास्त्रोंका बोध भी आपको अत्युत्तम था।

आप बड़ी योग्य और विदुषी आर्या थीं । परन्तु शोक ! वैशाख सुदी दशमी सम्वत् १९८७ को संथारा करके समाधि-मरण को प्राप्त हुईं । आपसे जैनसंघ को बहुत आशाएँ थीं । हा ! समाज के दुर्भाग्य से आप जैसी विदुषी आर्या असमय ही हमसे छिन गईं ।

७. श्री शीतलमती जी— आप केकड़ी मारवाड़ के उच्च महेश्वरी कुटुम्ब की कन्या हैं । आपका जन्म पौष सुदी १५ संवत् १९५२ को सेठ भोलानाथ की धर्मपत्नी श्रीमती गंगादेवी की कुक्षि से हुआ था । आपका विवाह सम्वत् १९६१ में सेठ कल्याणमल जी के सुपुत्र सेठ लक्ष्मी नारायण जी से हुआ था । आपको पति का वियोग उसी वर्ष हो गया । आप देहली में रहने लगीं और धर्म ध्यान में लगी रहतीं । यथाशक्ति अपना समय शुभ कार्यों में व्यतीत करती थीं । मार्गशीर्ष वदि १० सम्वत १९७७ को आपकी दीक्षा देहली में हुई । आपको श्री श्री १००८ श्री धनदेवी जी महाराज की शिष्या बनाया गया । विनयभक्ति से आपने अपनी आत्मा को धर्म मे लगाया । श्री द्रौपदां जी महाराज के उपदेश से वा श्री धनदेवी जी की कृपा से शास्त्रादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया ।

८. श्री धर्मवती जी— आप पुरपांची जिला रोहतक के चौधरी रामबक्श जाट की सुपुत्री थीं । ६ वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह होगया था । आपकी आयु अभी ८ वर्ष ही की थी कि आप एक साधु के व्याख्यान मे यह श्रवण कर कि जो मनुष्य धर्म नहीं करता उसको ८४ लाख जीव योनियों मे भ्रमण करना पड़ता है, विशेष प्रभावित हुईं और ससार से विरक्त हो गईं । घरवालों ने बहुतेरा समझाया किन्तु आप पर कुछ प्रभाव न पड़ा । १२ वर्ष की अवस्था होने पर आपने उस महात्मा से योग

दीक्षा धारण करने के भाव प्रकट किए । उन्होंने फ़रमाया कि पुत्रि ! तेरे विचार श्रेष्ठ हैं । तू जैन साध्वियों के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर । तेरे ध्येयानुसार इस कलिकाल में केवल जैन साधुओं का ही आचार है । सौभाग्य से उन्हीं दिनों सम्वत् १९७४ में श्री पूरणदेवी जी, श्री सोमादेवी जी और श्री मोहनदेवी जी अन्य आर्याओं के साथ उस गाव मे पधारीं । आप भागती हुई उनकी सेवा में उपस्थित हुई । श्री सोमादेवी जी से दीक्षा ग्रहण करने का भाव प्रकाशित किया । किन्तु सती जी केवल ? दिन वहा ठहर कर आगे चलदीं । स० १९७६ में देहली चातुर्मास्यमें चौधरी रामबक्श स्वय श्रीद्रौपदा जी महाराज ठाने जुमलाके चरणों में आपको छोड गया । इस प्रकार वैराग्यभाव से रहते और ज्ञानोपार्जन करते मार्गशीर्ष वदि १० सम्वत् १९७७ को आपने दीक्षा धारण की ।

आप श्री मोहनदेवी जी की शिष्या हुई । आपके भाव बहुत शुभ तथा उच्च थे । हर समय ससार के दु खों से छूटने और सच्चा सुख प्राप्त करने का विचार प्रमुख रखती थीं । १९ वर्ष की आयु में दीक्षा के १५ दिन पश्चात् जींद में, हैजे की बीमारी ने असक्र आपको स्वर्गलोक भेज दिया । आपने बडी गम्भीरता से शास्त्र श्रवण करते हुए समाधि-मरण प्राप्त किया । गृहस्थ में शुभनाम हरदेवी था । दीक्षा के पश्चात् धर्मदेवी हुआ ।

६ श्री जैनमती जी—आपका जन्म पिण्ड दादनखा जिला जेहलम में हुआ था । आपकी शादी स्यालकोटमें जटूशाह के साथ हुई । पतिका वियोग होने पर आपको वैराग्य प्राप्त हुआ । सम्वत् १९८० में शहर रावलपिण्डी में आपका दीक्षा महोत्सव हुआ । आप श्री श्री १००८ शान्तस्वभाव श्री सोमादेवी जी महाराज की

शिष्या हुई। गृहस्थ में आपका नाम जीवनीबाई था, दीक्षा के पश्चात् जैनमती प्रसिद्ध हुआ। आप बड़ी समझदार और शांत स्वभाव की साध्वी हैं। हर समय श्रीसोमादेवीजी की सेवामें तत्पर रहती हैं। बहुत विनयवती हैं तथा हरसमय तपस्यामें लगी रहती हैं।

१०. श्री रोशनमती जी— आप जम्मू के लाला लधूशाह जी रेंका ओसवाल की सुपुत्री हैं। आपकी माता जी का नाम कृपादेवी है। आप जम्मू के प्रसिद्ध ला० काकूशाह जी जौहरी की भतीजी हैं। आपका जन्म सम्वत १९४७ में हुआ था। विवाह स्यालकोट के प्रसिद्ध ला० पन्नाशाह जी के सुपुत्र ला० देशराज जी से हुआ था। ला० देशराज जी के स्वर्गवास होने के पश्चात आपको श्री द्रौपदां जी और श्री मोहनदेवी जी महाराज के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ। ज्येष्ठ सुदि ३ सम्वत् १९८० को रावलपिण्डी मे आपका दीक्षा महोत्सव हुआ। आप श्रीमोहनदेवी जी की शिष्या हैं। गृहस्थ में आपका नाम रत्नदेवी था दीक्षा के बाद रोशनमती प्रसिद्ध हुआ। आप बड़ी समझदार और शीतल स्वभाव की साध्वी हैं। हर समय श्री मोहनदेवी जी की सेवा में तत्पर रहती हैं। दीक्षा का सम्पूर्ण व्यय आपने स्वयं किया था।

११. श्री यत्नमती जी— आपका जन्म रावलपिण्डी के ला० मोहराशाह जी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमदेवी जी की कुक्षिसे हुआ था। आपका विवाह ला० बुड्ढेशाह जी के सुपुत्र ला० मैय्याशाह जी से हुआ। इनके स्वर्गवास होने के पश्चात् आपको श्री द्रौपदां जी के चातुर्मास्य में वैराग्य उत्पन्न हुआ। चैत्र सुदि संवत् १९८३ को रोहतक में आपका दीक्षा महोत्सव हुआ। आपको विमलवती जी की शिष्या बनाया गया। दीक्षा का सम्पूर्ण व्यय

आपने अपने पास से किया और जैनसभा को दान भी दिया।

१२ श्री हुक्मदेवी जी— आप नसोली गाव के प्रभुदयाल की सुपुत्री हैं। आपका जन्म सम्वत् १९७३ में हुआ था। बाल्य-काल से ही आपकी रुचि शिक्षाप्राप्ति की ओर थी। आपका मन, धर्म और वैराग्य की ओर प्रवृत्त रहता था। चैत्र सुदि २ सम्वत् १९८३ को ११ वर्ष की अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की। आप अच्छी समझदार हैं। पञ्जाबी में कविता किया करती हैं। आशा है, आपसे जैनधर्म की बहुत उन्नति होगी।

१३ श्री मनोहरमती जी— आप भवानी ज़िला हिसार के ला० फकीरचन्द जी ओसवाल की सुपुत्री हैं। आपका विवाह दादरी में ला० शेरसिंह जी रईस के छोटे भाई ला० डालूराम जी से हुआ था। उनके स्वर्गवास होने के पश्चात् श्री धनदेवी जी के चातुर्मास्य में, दादरी में आपको वैराग्य हुआ। संसार को असार समझकर अपनी एकमात्र प्यारी पुत्री को छोडकर, १९८४ में चैत्र शुदि पचमी को बड़ी धूमधाम से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा महोत्सव दादरी में ही हुआ था। दीक्षा का कुल व्यय आपके जेठ ला० शेरसिंह जी ने किया। आप शीतलमती जी की शिष्या हैं। धन्य है! ऐसी वीर आर्याओं को जो अपना जन्म सफल करती हैं और धर्म में दृढ़ हैं तथा तन, मन और धन धर्म पर न्योछावर कर देती हैं। आपके लिए बारम्बार धन्य है।

१४ श्री सुदर्शनाजी जी— आप चर्खी दादरी के सुप्रसिद्ध चौधरी रामप्रसाद जी अग्रवाल रईसकी सुपुत्री हैं। आपकी माता का नाम श्रीमती भगवतीदेवी है। आपका जन्म माघ सं० १९५९ को दादरीमें हुआ था। आपका विवाह वैशाख शुदि ३ सं० १९७२

को कलकत्ताके सेठ छेनुमलजीजौहरीके सुपुत्र सेठ नानकचंदजी से हुआ। चूंकि आपके मनमें वैराग्य और त्याग के भाव उत्पन्न हो चुके थे, अतः अपने पति और सांसारिक सुखों को त्यागकर, बड़ी धूमधामसे आषाढ़ शुदि ५ सं० १६८६ को दीक्षा ग्रहण की।

आप बड़ी समझदार और विदुषी आर्या हैं। आपने २८ शास्त्रों का अभ्यास किया है। आप श्रीमनोहरमनी जी की शिष्या है। आपका उपदेश और व्याख्यान बड़ा रसमय, मनोहर और प्रभावशाली होता है। जैन समाज को आप पर अत्यन्त गौरव है।

१५. श्री जगदीशमनी जी- आप अलवर के लाला धर्मचन्द जी ओसवाल की सुपुत्री हैं। आपका जन्म चैत्र वदि एकम सम्वत् १६७८ मे हुआ था। आपके पुण्योदय से आपकी दादी प्रतापीबाई ने संसार को असार समझकर, मनोहरमनी जी की दीक्षा पर, आपको श्री द्रौपदां जी के सुपुर्द कर दिया। आपने केवल नौ साल की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की थी। आपका दीक्षा महोत्सव चिराग देहली मे बड़ी धूमधाम से हुआ था और आर्या सुदर्शना मती की शिष्या हैं। आपकी विद्या में बहुत रुचि है। दशवैकालिक उत्तराध्ययन, उपाशक दशांग,अन्तगंड, अनुत्तरोवाई और बहुत से थोकड़े कण्ठस्थ हैं। आशा है कि आप विदुषी आर्या बनेंगी और आपसे जैनधर्म की काफ़ी उन्नति होगी।

१६. श्री रुक्मणी जी— आपका जन्म देहली के लाला दीपचन्द जी ओसवाल चोरड़िया जौहरी की धर्मपत्नी श्रीमती नेमोदेवीजी की कुक्षि से सम्वत् १६७७ में हुआ था। बाल्यकालसे ही आपकी रुचि विद्याध्ययन, ज्ञान ध्यान और धर्म की ओर थी। १२ वर्ष की आयु मे ही आपने कई ग्रन्थ वा सूत्र कण्ठस्थ कर

लिये थे। पढ़ने के साथ २ आपने लिखने और व्याख्यान देने का भी काफ़ी अभ्यास कर लिया था। १७ वर्ष की आयु में आपने बड़े वैराग्य और त्याग से वैशाख सुदि १९८८ बृहस्पतिवार को, देहली में श्री मोहनदेवी जी के पास दीक्षा ग्रहण की। इस अवसर पर आपकी सेवामें जैन कन्या पाठशाला वा अन्य प्रमुख नागरिकों की ओर से अभिनन्दनपत्र पेश किए गए थे।

शीघ्र ही प्राकृत व्याकरण, उत्तराध्ययन के कुछ अध्याय और ७५ थोकड़े कण्ठस्थ कर लिए और श्री दशवैकालिक, उत्तराध्ययन अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोवाई, जीवाभिगम कल्पसूत्र पठन किए। आप एक होनहार आर्या थीं। जैनसमाजको आपपर बहुत आशाएँ थीं। परन्तु दीक्षा के सवा दो वर्ष बाद आलोचना सथारा करके होश्यारपुर में समाधि-मरण को प्राप्त हुई। आपके असामयिक वियोग से जैन समाज को बहुत हानि हुई है।

१७, श्री फूलमती जी— आपका जन्म सम्वत् १९५० में मौजा शहर जोधपुर राज्य में लाला विशनदास ओसवाल की धर्मपत्नी श्रीमती धनकुँवरी जी के गर्भ से हुआ था। आपका विवाह देहली लाला छोटेलाल जी जौहरी के सुपुत्र धन्नामल जी जौहरी से सम्वत् १९६२ में हुआ था। आरम्भ से ही आपको धर्म और ज्ञान का अभ्यास था। सम्वत् १९८८ ज्येष्ठ सुदि अष्टमी को देहली में आपने बहुत सी सम्पत्ति छोड़कर दीक्षा ली। आपके सुपुत्र ला० कपूरचन्दजी ने दीक्षा महोत्सव पर लाल पुण्य पुण्य किया और लगभग अढ़ाई हज़ार रुपया दीक्षापर व्यय किया। आप श्री सुदर्शनाजी की शिष्या हैं। आपने नव शास्त्रों का अभ्यास किया।

१८ श्री पन्नादेवी जी— आपका जन्म सवत् १९८१ में पुरवा ग्राम ज़िला रोहतक के चौधरी कवलरामकी धर्मपत्नी छोटोदेवी की कुक्ष से हुआ था। आपकी बाल्यावस्था में ही आपकी माता

का स्वर्गवास होगया और अन्तिम समय आपकी माता कह गई थीं कि इस लड़की को धर्ममार्ग पर आरूढ़ करना। सं० १९९२ में आपके पिता चौधरी केवलराम आपको श्रीमोहनदेवी जी महाराज के चरणकमलोंमें शिष्यारूपमें भेंट कर गये। आप ३वर्ष उक्त आर्या जी के पास वैराग्यावस्थामें रहीं। सं० १९९५ में आपका दीक्षोत्सव हुश्यारपुर में हुआ और आप श्री रोशनमती जी की शिष्या हुईं। आप विद्याप्रेमी हैं। कई सूत्र, ग्रन्थ, थोकड़े आपको कण्ठस्थ हैं। आशा है आप अच्छी विदुषी होंगी और जैनधर्मका उद्योत करेंगी।

१९. श्रीमती तिलकासुन्दरी जी— आपका जन्म लाला घासीराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती केसरादेवी जी की कुक्षि से हुआ था। कुछ समय पश्चात् आपके पतिदेव का स्वर्गवास होगया और आप वैष्णव मतानुसार धर्मध्यानमे प्रवृत्त हुईं। सं० १९९९ मे श्री धनदेवी जी महाराज भिवानी पधारीं। उनके सदुपदेश वा सत्-सङ्गति से आपको जैनधर्म की ओर रुचि हुई और जैनधर्म का परिचय प्राप्त किया तथा आपको वैराग्य का ऐसा रङ्ग चढ़ा कि जैनसाध्वी दीक्षा लेने को तत्पर होगईं। आषाढ़ सुदि १० बृहस्पति वार १९९९ को हांसी मे आपका दीक्षा महोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। भारी संख्या मे श्रद्धालु गृहस्थ कई नगरों से इस अवसर पर उपस्थित हुए थे। और आपने कई संस्थाओं को काफ़ी दान दिया। ऐसी सुशीलादेवी को धन्य है! जिसने अल्पकालमें ही अनासक्तिभाव को प्राप्तकर भारी संपत्ति को त्याग दिया और परमकल्याणकर जैन साध्वी दीक्षा को धारण किया। आप श्रीमनोहरमतीजी की शिष्या हैं। आशा है आपसे जैनधर्मकी काफ़ी उन्नति होगी। आपका गृहस्थ नाम भगवती देवी था। अब दीक्षानन्तर श्री तिलकासुन्दरी जी है।